❀ माड़ना—श्रीकल्याणमन्दिर पूजा ❀

श्री पार्श्वनाथाय नमः

श्री कुमुदचन्द्राचार्य विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

मूल, नूतनपद्यानुवाद, अर्थ, यंत्र, मंत्र, ऋद्धि, साधनविधि
गुण, फल तथा श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिप्रणीता
कल्याणमन्दिर स्तोत्र पूजा सहित

लेखक
पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'
खुरई (सागर) म० प्र०

प्रकाशक
मोहनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ,
मोहनलाल शास्त्री मार्ग, जवाहगंज, जबलपुर (म प्र)

द्वितीय संस्करण
वीर निर्वाण संवत् २४९९
मूल्य (२) रुपया

भूमिका

कल्याणमन्दिरस्तोत्र और उसके रचयिता

जैनधर्म मे जहाँ ज्ञान को महत्त्व दिया गया है वहाँ भक्ति को भी उल्लेखनीय स्थान मिला है। स्वामी समन्तभद्र जैसे उद्भट आचार्यों ने अपने अनेक ग्रन्थ या यो कहिए कि रत्नकरण्डकश्रावकाचार को छोडकर शेष सभी उपलब्ध ग्रन्थ अरिहन्त भगवान के स्तवन मे ही रचे हैं। उनके स्वयम्भूस्तोत्र देवागमस्तोत्र, युक्त्यनुशासनस्तोत्र और जिनशतक (स्तुतिविद्या) ये स्तोत्र-ग्रन्थ अर्हंद्भक्ति के उत्कृष्ट नमूने हैं और भारतीय स्तोत्र-साहित्य मे वेजोड एव अद्वितीय कृतियाँ हैं। आचार्य मानतुङ्ग का भक्तामरस्तोत्र, आचार्य धनञ्जय कवि का विषापहारस्तोत्र, आचार्य वादिराज का एकीभावस्तोत्र, श्रीभूपालकवि (भोजराज महाराज) का जिनचतुर्विंशतिकास्तोत्र और आचार्य कुमुदचन्द्र का प्रस्तुत कल्याणमन्दिरस्तोत्र ये स्तुति-रचनाएँ भी अर्हंद्भक्ति की अपूर्वधारा को वहाने वाली है।

भक्ति और उसका उद्देश्य

ससारी प्राणी राग, द्वेप, लोभ, अहकार, अज्ञान आदि अपने दोषो से निरन्तर दुखी बना चला आ रहा है और कभी-कभी वह कर्म की चपेट मे इतना आ जाता है कि वह घबडा उठता है और उस दु ख से छूटने के लिये ऐसी जगह अथवा ऐसी आत्मा की तलाश करता है—उस ओर अपना

ध्यान केन्द्रित करता है जहाँ दुःख नही है और न दुःख के कारण राग, द्वेष, अज्ञानादि है। इस तलाश मे उनकी दृष्टि वीतराग आत्मा मे जाकर स्थिर हो जाती है और उसके दुःख-मोचनादि गुणो मे अनुराग करने लगती है। इस गुणानुराग को ही भक्ति कहते हैं। श्रद्धा, प्रार्थना, स्तुति, विनय, आदर, नमस्कार, आराधना आदि ये सब उसी भक्ति के रूप हैं और भक्ति का यही प्रयोजन अथवा उद्देश्य है कि स्तुत्य के वे दुःखरहितादिगुण भक्त को प्राप्त हो जॉय—वह भी उन जैसा बन जाय। इसी बात को प्रस्तुत स्तोत्र मे भी निम्न प्रकार बतलाया है—

> त्वं नाथ दुःखिजन वत्सल ! हे शरण्य !,
> कारुण्यपुण्यवसते ! बशिनां बरेण्य !
> भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय,
> दुःखाऽङ्कुरोद्दलन — तत्परतां विधेहि ॥

'हे नाथ ! आप दुखी जनो के वत्सल हैं, शरणागतो को शरण देने वाले हैं, परम कारुणिक हैं और इन्द्रिय विजेताओ मे श्रेष्ठ है, मुझ भक्त को भी दया कर आप दुःख और दुःखदायी अज्ञानादि को नाश करने वाला बनाये।'

यही समन्तभद्र स्वामी ने, जिन्हे विद्वानो द्वारा 'आद्य स्तुतिकार' कहे जाने का गौरव प्राप्त है, स्वयम्भूस्तोत्र मे शान्तिजिन का स्तवन करते हुए कहा है —

> स्वदोष — शान्त्या विहितात्मशान्तिः,
> शान्ते विधाता शरणं गतानाम् ।
> भूयाद् भवक्लेश भयोपशान्त्यै,
> शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्य ॥

'हे शान्तिजिन ! आपने अपने दोषो को शान्त करके आत्मशान्ति प्राप्त की है तथा जो आपकी शरण मे आये उन्हे भी आपने शान्ति प्रदान की है। अत आप मेरे लिये भी ससार के दु खो तथा भयो अथवा ससार के दु खो के भयो को शान्त (दूर) करने मे शरण हो।'

यही कारण है कि स्तुति मे भक्त यह कामना करता है कि 'हे भगवन् ! मेरे दुख का क्षय हो, कर्म का नाश हो, आर्त-रौद्र ध्यान रहित सम्यक् मरण हो और मुझे बोधि (सम्यग्दर्शनादि) का लाभ हो। आप तीनो जगत के बन्धु हैं, इसलिये हे जिनेन्द्र ! मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हू।

जैसा कि एक प्राचीन निम्नगाथा मे बतलाया गया है—

दुक्ख-खओ कम्म-खओ, समाहिमरण च बोहिलाहो यँ।
मम होउ तिजग-बन्धव ! तव जिणवर ! चरण-सरणेण ।।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि वीतरागदेव की उपासना अथवा भक्ति से क्या दु खो और दु.ख के कारणो का अभाव सम्भव है ? जब वे वीतरागी हैं तो दूसरे के दु खादि को दूर करने मे वे समर्थ कैसे हो सकते है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वीतरागदेव विशुद्ध एव पवित्र आत्मा हैं उनके स्मराणादि से आत्मा मे शुभ परिणाम होते है और उन शुभ परिणामो से पुण्य प्रकृतियो का उपार्जन तथा पाप प्रकृतियो का ह्रास होता है और उस हालत मे वे पाप प्रकृतियाँ भक्त के अभीष्ट दु खो तथा दु ख के कारणों के अभाव मे बाधक नही हो पाती— उसे उसके अभीष्टफल की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसी बात को एक निम्नपद्य मे बहुत ही स्पष्टता के साथ मे बतलाया गया है—

नेष्ट विहन्तुं शुभभाव-भग्न–रसप्रकर्ष. प्रभुरन्तराय ।
त्वत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदाऽर्हदादे ॥

'अरिहन्तादि परमेष्ठियो के गुणो मे भक्तिपूर्वक किया गया नमस्कारादि अभीष्टफल को देता है। साथ ही उसमे पैदा हुए शुभ परिणामो के सामर्थ्य से अन्तरायकर्म (पाप कर्म) निर्वीर्य होकर नष्ट हो जाता है और वह इष्ट का विघात करने मे समर्थ नही होता।'

इसी स्तोत्र मे और भी एक जगह कहा गया है—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धा ।
सद्यो भुजङ्गमनया इव मध्यभाग,—
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥

'हे विभो ! जिस प्रकार चन्दन के वन मे मयूर (मोर) के पहुचते ही वृक्षो से लिपटे सर्प तत्काल उनसे अलग हो जाते हैं उसी प्रकार भक्त के हृदय मे आपके विराजमान होने (स्मरणादि किये जाने) पर अत्यन्त गाढ अष्ट कर्मों के वन्धन भी क्षण भर में ही ढीले पड़ जाते है।'

इतना ही नही बल्कि वह परमात्मदशा को भी प्राप्त हो जाता है ' जैसा कि इसी स्तोत्र के निम्न पद्य मे प्रतिपादन किया गया है

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविन क्षणेन, देह विहाय परमात्मदशा व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके, चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदा ॥

'हे जिनेश ! जिस प्रकार धातुविशेष (अशुद्ध स्वर्णादि) अग्नि की तेज आंच मे अपने पाषाणरूप अशुद्धभाव को छोडकर शीघ्र ही सोना हो जाता है उसी प्रकार आपके ध्यान

से ससारी जीव भी शरीर का त्याग कर अशरीर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।'

विद्यानन्दस्वामी भी अपनी आप्तविषय पर लिखी गई आप्तपरीक्षा मे यही बतलाते हुए कहते हैं –

श्रेयोमार्गस्य ससिद्धि, प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्र, शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवा ॥

'परमेष्ठी के गुणस्मरणादि से स्तुतिकर्ता को श्रेयोमार्ग (सम्यग्दर्शनादि) की प्राप्ति और ज्ञान दोनो होते हैं। अत. बड़े-बडे मुनीश्वरो ने उनका गुणस्तवन किया है।'

तत्त्वार्थसूत्रकार महान् आचार्य श्री गृद्धपिच्छ भी इसी बात को प्रदर्शित करते हुए अपने तत्त्वार्थसूत्र के शुरू मे निम्नप्रकार मगलाचरणरूप गुणस्तोत्र करते हैं –

मोक्षमार्गस्य नेतार, भेत्तार कर्मभूभृताम्।
ज्ञातार विश्वतत्त्वाना, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि वीतराग देव को भक्त की स्तुति-प्रार्थना अथवा नमस्कारादि से कोई प्रयोजन नही है उसे वह करे चाहे न करे, क्योकि वह वीतराग एव वीतद्वेष है और इसलिए उसके करने से वह प्रसन्न और न करने से अप्रसन्न नही होता। फिर भी उसके पवित्र गुणो के स्मरण से भक्त का मन अवश्य पवित्र होता है जैसा कि समन्तभद्र स्वामी ने कहा है।

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृति र्न, पुनाति चित्त दुरिताञ्जनेभ्य ॥

इतना ही नही बल्कि वीतराग देव की स्तुति-प्रार्थनादिक करने वाला तो स्वभावत. सुखी एव श्रीसम्पन्नता को

प्राप्त होता है और निन्दा करने वाला दुःख को पाता है। किन्तु वीतराग देव दर्पण की तरह दोनों मे राग-द्वेष रहित रहते हैं। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र और आचार्य धनजय के निम्न पद्यो से प्रकट है —

(क) सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषन् त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥

—स्वयम्भूस्तोत्र ॥६९॥

(ख) उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्।
सदाऽवदातद्युतिरेकरूप — स्तयोस्त्वमादर्श इवाऽवभासि ॥

—विषापहार ॥७॥

इस सब कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परम वीतराग देव की भक्ति से ससारी जीवो को दुःखो का नाश आदि अभीष्टफल अवश्य प्राप्त होता है। अत भक्ति को लेकर जैनधर्म मे जैनाचार्यों द्वारा विपुल साहित्य की रचना होना सर्वथा उपयुक्त एव स्वाभाविक है।

प्रस्तुत स्तोत्र के विषय में—

प्रस्तुत कल्याणमन्दिर स्तोत्र भक्तामरस्तोत्र की तरह अतिशयपूर्ण एव भावगर्भ भक्तिविषय की एक श्रेष्ठ रचना है। इसके भाव और भाषा दोनो बडे ही विशद हैं। इसमे भक्ति की जो धारा प्रवाहित है वह अनूठी है। अनुश्रुतियो तथा स्तोत्र के अन्त परीक्षण से ज्ञात होता है कि इसकी रचना उस समय हुई है जब आचार्य महोदय पर कोई विपत्ति आई हुई थी। स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो स्तवन रचे हैं वे उन पर सकट आने पर जिनशासन का प्रभाव और चमत्कार दिखाने के लिये ही रचे हैं। जैसे समन्तभद्र

स्वामी ने शिवपिण्डी को नमस्कार करने के लिये बाध्य करने का प्रसग उपस्थित होने पर स्वयम्भूस्तोत्र की रचना की, आचार्य मानतुङ्ग ने ४८ तालो के अन्दर बन्द किये जाने पर भक्तामरस्तोत्र बनाया, आचाय धनञ्जयकवि ने अपने पुत्र के सर्प द्वारा डसे जाने पर विषापहारस्तोत्र को रचा और आचार्य वादिराज ने कुष्टरोग से पीडित होने पर एकीभाव स्तोत्र बनाया। उसी प्रकार आचार्य कुमुदचन्द्र पर भी किसी कष्ट के आने पर उनके द्वारा इस स्तोत्र की रचना हुई है। कहा जाता है कि इन्होने इस स्तोत्र द्वारा भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन करके एक स्तम्भ से उनकी प्रतिमा प्रकटित की थी और जिनशासन का प्रभाव एव चमत्कार दिखाया था।

इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'पार्श्वजिनस्तोत्र' भी है। जैसा कि इसके दूसरे पद्य मे प्रयुक्त कमठ-स्मय-धूमकेतु' नाम से प्रकट है, जो भगवान पार्श्वनाथ के लिये आया है। 'कल्याण मन्दिर' शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इसे कल्याणमन्दिर स्तोत्र उसी प्रकार कहा जाता है जिस प्रकार आदिनाथ स्तोत्र को भक्तामर' शब्द से शुरू होने से 'भक्तामर स्तोत्र' कहा जाता है।

इस सुन्दर कृति को भक्तामरस्तोत्र की तरह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदाय मानते हैं। श्वेताम्बर इसे सन्मतिसूत्र आदि के कर्ता श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेन दिवा-की रचना बतलाते हैं और दिगम्बरस्तोत्र के अन्त मे आये 'जननयन-कुमुदचन्द्र-प्रभास्वरा' आदि पद्य मे सूचित 'कुमुद-चन्द्र' नाम से इसे दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र की कृति मानते है। इस सम्बन्ध मे यहां खास तौर से ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस स्तोत्र मे 'प्राग्भारसभृतनभासि रजांसि रोषात्'

आदि ३१ वें पद्य से लेकर 'ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड' आदि ३३ वें पद्य तक तीन पद्यों में भगवान् पार्श्वनाथ पर दैत्य कमठ द्वारा किये गये उपसर्गों का उल्लेख किया गया है जो दिगम्बर परम्परा के अनुकूल है और श्वेताम्बर परम्परा के प्रतिकूल है, क्योंकि दिगम्बर परम्परा मे तो भगवान पार्श्वनाथ को सोपसर्ग और अन्य २३ तीर्थंकरो को निरुपसर्ग प्रतिपादन किया गया है और श्वेताम्बरीय आगम सूत्रो तथा आचारागनिर्युक्ति मे वर्धमान (महावीर) को सोपसर्ग और २३ तीर्थंकरो को जिनमे भगवान पार्श्वनाथ भी है, निरुपसर्ग बतलाया है। जैसा कि उक्त निर्युक्ति गत निम्नगाथा से प्रकट है—

सव्वेसिं तवोकम्म, णिरुवसग्गं तु वण्णिय जिणाण ।
णवर तु वड्ढमाणस्स, सोवसग्ग मुणेयव्वं ॥ २४६ ॥

'सब तीर्थंकरो का तप कर्म निरुपसर्ग कहा गया है और वर्द्धमान का तप कर्म सोपसर्ग जानना चाहिए।'

इस बारे मे मेरा वह खोजपूर्ण लेख देखना चाहिए जो अनेकान्त (वर्ष ६ किरण १०-११ पृष्ठ ३३६) मे क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक हैं ?' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है।

स्तोत्र के प्रारम्भ मे भी भगवान् पार्श्वनाथ के स्तवन की प्रतिज्ञा करते हुए उन्हे 'कमठस्मयधूमकेतु' के नाम से उल्लेखित किया है।

इसके सिवाय स्तोत्र मे 'धर्मोपदेशसमये' आदि १९ वें पद्य से लेकर 'उद्योतितेषु भवता' आदि २६ वे पद्य तक ८ पद्यो मे इसी तरह ८ प्रतिहार्यो का वर्णन किया गया है

जिस प्रकार दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र मे २८ वें पद्य से लेकर ३५ वें पद्य तक के ८ पद्यो मे उनका वर्णन उपलब्ध है। अन्यथा, श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र की तरह इसमे भी चार ही प्राति-हार्यो (अशोकवृक्ष, पुष्पवर्षा, दिव्यध्वनि और चमर) का कथन होना चाहिये था, किन्तु इसमे उन चार प्रतिहार्यों (सिहासन, भामण्डल, दुन्दुभि और छत्र) का भी प्रतिपादन है जिनका दिगम्बर भक्तामरस्तोत्र मे है और श्वेताम्बर भक्तामरस्तोत्र मे नही है। अत इन वातो से इसे दिगम्बर कृति होना चाहिए।

इसके रचयिता कुमुदचन्द्राचार्य का सामान्य अथवा विशेप परिचय क्या है और उनका समय क्या है? इस सम्वन्ध मे विद्वानो को विचार एव खोज करना चाहिये। विक्रम की १२ वी शताब्दी के विद्वान् वादिदेवसूरि की जिन दिगम्बर विद्वान् कुमुदचन्द्राचार्य के साथ 'स्त्रीमुक्ति' आदि विषयो पर शास्त्रार्थ होने की वात कही जाती है, यदि वे ही कुमुदचन्द्राचार्य इस स्तोत्र के रचियता हैं तो इनका समय विक्रम की १२ वी शताब्दी समझना चाहिए।

अन्त मे समाज के उत्साही विद्वान् प० कमल-कुमार जी शास्त्री के अध्यवसाय की मैं सराहना करता हूँ कि जिन्होने इस स्तोत्र को बहुपरिश्रम के साथ समाज के सामने इस रूप मे प्रस्तुत किया है।

इति शम्

दरबारीलाल कोठिया,
(न्यायाचार्य) व्याख्याता,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी उ० प्र०

भारतवर्ष के अद्वितीय

आध्यात्मिक सन्त का

– शुभाशीर्वाद् –

श्री प० कमलकुमार जी शास्त्री द्वारा कल्याणमन्दिरस्तोत्र
का यह सस्करण उत्तम रीति से तैयार किया गया है।
आपने अनेक जैन-ग्रन्थ भडारो से इसकी सामग्री
प्रस्तुत की है। श्री पार्श्वनाथ जी का
स्तोत्र अनेक विघ्न का विनाशक है।
अत मुझे पूर्ण आशा है कि
इसे पढ कर जनता लाभ
उठावेगी।

शुभचिन्तक
गणेश वर्णी,

आ वे द न

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन खुरई की ओर से बहुत समय पूर्व श्री भक्तामर महाकाव्य का एक सर्वाङ्गीण सुन्दर सस्करण श्री प० कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' खुरई द्वारा नवीन भावपूर्ण सरल पद्यानुवाद, अर्थ भावार्थ, ऋद्धि, मत्र, साधनविधि, फल एव श्री सोमसेनकृत भक्तामरकाव्यमडल सस्कृतपूजा उद्यापन आदि सहित सम्पादित करा कर २००० की सख्या मे प्रकाशित किया गया था। हर्ष है कि धार्मिक जैन-जनता मे उसका सतोषजनक स्वागत हुआ (समस्त जैन पत्रो एव कई जनेतर सार्वजनिक समाचार पत्रो ने भी उसकी मुक्तकठ से प्रशसा की थी। उसकी बढती हुई माग को उसकी लोकप्रियता और उपयोगिता का प्रमाण मान कर प्रोत्साहित हो हम अपनी पूर्व सूचनानुसार अब यह ससार के असह्य कष्टो से छुडाने वाला, विविध उपद्रव विनाशक वा पापनाशक श्री कल्याण मन्दिरस्तोत्र लेकर आपके सामने उपस्थित हो रहे है।

श्री कुमुदचन्द्राचार्य की यह अमर रचना धार्मिक जैन समाज मे बडी ही रुचि और श्रद्धा के साथ नित्य नियमित पठन-पाठन की वस्तु मानी जाती है। उत्तमकाव्य की वे सभी विशेषताएँ इसमे बडी ही सुन्दरता के साथ समाविष्ट है, जो इसके अध्ययन-मनन करने वालो को मुग्ध और आत्म-विभोर कर देती हैं। कवि ने भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति मे अपने आपको खोकर लोकोत्तर कल्पनाओ द्वारा मानवकल्याण की साधना के लिए एक ऐसी सीढी तैयार कर दी है, जिस पर से

हमारी आत्मिक अपूर्णता उस अनन्त सम्पूर्णता को छूने लगती है जो आत्मविकाश के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी गई है

ऐसे सुन्दर स्तोत्र के सर्वाङ्ग पूर्ण प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव कर उक्त सदन के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री पडित कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' ने बडी लगन के साथ जैसलमेर, कारजा, देहली आदि के प्राचीन जैन शास्त्रभडारो की शोध खोज कर आवश्यक सामग्री का सकलन किया है। इस कार्य मे कुमुद जी को कठिन श्रम और प्रवास कष्ट उठाना पडा किन्तु आवश्यक साहित्य की उपलब्धि के आनन्द ने उनके उत्साह को दूना कर दिया, अतएव उनका जितना भी आभार माना जाय थोडा होगा। यह स्तोत्र उन्ही कुमुद जी द्वारा सुसम्पादित हो शुद्ध मूलपाठ, सुन्दर सरल नवीन पद्यानुवाद, भावार्थ, ऋद्धि, मत्र, यत्र, साधनविधि, फल तथा उसकी पूजा और उद्यापन आदि विविध सामग्री के साथ ही श्री पडित बनारसीदास जी कृत भावपूर्ण पद्यानुवादसहित आपके कर-कमलो मे देने को हम समर्थ हुए है। आशा है कृपालु धर्मप्रेमी सज्जन इसे अपना कर हमे उत्साहित करेंगे।

आवेदक

मोहनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ,
मोहनलाल शास्त्री मार्ग,
जवाहरगज, जबलपुर-२ म प्र

अपनी बात

पुस्तक लिखने के पूर्व लेखक को अपनी ओर से कुछ लिखना ही चाहिये। इस परम्परा के नाते मै निम्न पक्तियाँ अपने प्रिय पाठको के सम्मुख नही रख रहा हूँ, न ही स्तोत्र की स्वय सिद्ध सर्वश्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराने की मेरी अभिलाषा अथवा साहस है। यहाँ तो केवल अपनी उस अक्षमता को प्रकट करना है, जो सभवत किन्ही सक्षम एव कुशल हाथो की ही वाट जोहता-जोहता निराश सा हो रहा था। आशा है, इसलिये आप प्रस्तुत पुस्तक मे रह जाने वाली त्रुटियो एव अभाव की ओर लक्ष्य करने के पूर्व उन अनेक कठिनाइयो और बाधाओ की ओर अपना विशाल दृष्टिकोण अपनायेंगे जिनके कारण "भक्तामर स्तोत्र" से भी श्रेष्ठतर यह 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' जो कि वस्तुत कल्याण का ही मन्दिर है, अपने उस सर्वाङ्ग सम्पूर्ण स्वरूप मे अभी तक जनता के सामने नही आ सका और यही कारण है कि अपने ख्याति एव लोकप्रियता के क्षेत्र में वह 'गुदडी का लाल' ही बना रहा। आद्योपान्त इस मङ्गलमय स्तोत्र का रसपान करके पाठक स्वीकार करेंगे कि इसमे वह भावपूर्ण भक्ति है जो कि आनन्द का एक अविरल निर्भर बहा सकने की शक्ति रखती है।

दैविक अतिशय एव फलप्राप्ति ही अपेक्षा से ही प्रस्तुत स्तोत्र अन्य प्रसिद्ध प्रचलित जैनस्तोत्रो की तुलना मे कितना अधिक चमत्कारपूर्ण है, इसको इतिहास की वह घटना ही स्पष्ट कर देती है कि जिसके द्वारा इस स्तोत्र के सम्माननीय रचयिता श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी ने ओकारेश्वर के शिवलिङ्ग से श्री १००८ श्री पार्श्वनाथ जी का सौम्य प्रतिबिम्ब अपार

जनता के समक्ष प्रकट कर विक्रमादित्य जैसे कट्टर शैव सम्राट् का मस्तक नम्रीभूत कर दिया एवं पतितपावन जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की। कहना नहीं होगा कि ऐसी अवस्था में पुस्तक की जितनी ही अधिक आवश्यकता थी, उतना ही अधिक उसकी सम्पन्नता में साधनों का अभाव था। उन्हीं सारी कठिनाइयों को आपके सामने रखे बिना मुझसे नहीं रहा जायगा। क्योंकि उन्हें प्रकट न करने देना भी एक प्रकार की अपूर्णता सिद्ध होती।

अन्य स्तोत्रों की भांति इस स्तोत्र का पूर्ण अथवा अपूर्ण इतिहास जैन शास्त्रों में कहीं है, यह खोजना जहाँ एक समस्या बनी हुई थी, वहां दूसरी ओर श्लोकों के ऋद्धिमंत्र तथा यंत्रों को शुद्धतम रूप से पुस्तक में देना असंभव बना हुआ था। क्योंकि घोर अध्यवसाय एवं उद्योग के बाद इस स्तोत्र की एक ही प्रति देहली के पंचायती जैनमन्दिर से उपलब्ध हुई और वह भी अशुद्ध। परन्तु प्राकृतभाषा के विद्वान श्रीमान पंडित बालचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री देहली तथा श्रीमान पंडित फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री वाराणसी की असीम कृपा के लिये क्या कहा जाय कि जिन्होंने अनवरत श्रम करके ऋद्धियों, मंत्रों और यंत्रों में उपयुक्त संशोधन किये।

यहाँ यह स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है कि प्रस्तुत पुस्तक में साधनविधिसहित दो प्रकार के ऋद्धि और मंत्र दिये गये हैं। एक तो वे जो प्रत्येक श्लोक के नीचे दिये गये हैं और दूसरे वे जो कि पुस्तक के मध्य में (पृष्ठ ९७ से पृष्ठ १४४ तक) अलग से ही यंत्राकृतियों सहित प्रकाशित हैं। वह सब देहली से प्राप्त मूल प्रति का ही संशोधित रूप है। यद्यपि रूप इसका अवश्य संशोधित है तथापि एक आवश्यक अभाव

ऋद्धियो मे विद्यमान होने के कारण पहले प्रकार की ऋद्धिया ही श्लोको के नीचे स्थान पा सकी। वह अभाव है मूल ऋद्धियो मे सज्ञा का लोप होना। इसी जटिलता के फलस्वरूप "महाबन्ध ग्रन्थ (महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) के अनुसार ऋद्धियो की सज्ञाए उनमे जोड कर मूल के साथ वडे ही कौशल से सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इस प्रकार श्लोको के नीचे लिखी हुई ऋद्धिया एक सर्वथा नवीन एव दुर्लभ कृति वन कर पाठको के सामने लाते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस नई सूझ का विशेष श्रेय श्रीमान प० वालचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री को ही है, जिन्होने सामञ्जस्य स्थापित करने मे सराहनीय उद्योग कर मुझे अनुगृहीत किया।

देहली मे जो प्रति मुझे प्राप्त हुई वह वस्तुत जैसलमेर के विशाल शास्त्र भडार की मूलप्रति की ही प्रतिलिपि है किन्तु उसे प्राप्त करने मे असफलता के अतिरिक्त और क्या हाथ लगता।

इस पुस्तक मे प्रकाशित मत्राम्नाय श्री देवचद लालभाई जैन पुस्तकोद्धारक सस्था सूरत से प्रकाशित स्तोत्रत्रय से लिया गया है। और यह मन्त्राम्नाय इस स्तोत्रत्रय मे आचार्य महाराज श्री जयसिंह जी सूरि द्वारा सगृहीत हस्तलिखित प्रति से लिया गया है। इस मन्त्राम्नाय की रचना ग्यारहवी शताब्दी के बाद हुई प्रतीत होती है। क्योकि महान मन्त्रवादी श्री मल्लिसेनसूरि विरचित भैरवपद्मावतीकल्प नामक ग्रन्थ मे इन मन्त्रो का अधिकाश भाग आया है और ये मल्लिसेन सूरि ग्यारहवी शताब्दी मे हुए है। स्तोत्रत्रय की रचना भैरवपद्मावतीकल्प के बाद हुई है।

येन केन प्रकारेण सब कुछ हो जाने के बाद भी पुस्तक मानो स्वय ही एक अभाव की पूर्ति के लिये पुकार रही थी

आवश्यक सूचनाएं

मन्त्रो के आराधन मे निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

१—मन्त्र पर पूर्ण श्रद्धान हो।

२—मन में ग्लानि न हो, चित्त शान्त हो और शरीर स्वस्थ हो।

३—मन्त्र की साधना के समय ध्यान इधर-उधर न रखे, मन्त्र मे ही निहित हो, मन की प्रवृत्ति को चलायमान नही करे।

४—मन्त्र की साधना के समय भयभीत न होवे।

५—मैं अमुक कार्य के लिये अमुक मन्त्र की साधना कर रहा हूँ ऐसा किसी से नही कहे किन्तु गुप्तरूप से मन्त्र को सिद्ध करे।

६—शुद्ध एकान्तस्थान मे मन्त्र की साधना करे।

७—मन्त्रसाधना की समाप्ति तक स्थान परिवर्तन नही करे।

८—जिस मन्त्र की जो साधनविधि है तद्रूप ही कार्य करे अन्यथा प्रवृत्ति करने से विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो सकती है और सिद्धि मे भी आशङ्का हो सकती है।

९—प्रारम्भ से समाप्ति पर्यन्त दीपक, धूपदान, आसनी, माला, वस्त्र आदि चीजो मे परिवर्तन नही करे।

१०—एक समय शुद्ध सात्विक भोजन करे।

११—जमीन या पाटे पर शयन करे।

१२—ब्रह्मचर्य व्रत से रहे।

१३—हरएक मत्र शुभ मिति मे प्रारम्भ करे

१४—धोती दुपट्टा वनयान प्रतिदिन धोकर सुखा देवे।

१५—स्नान करने के वाद ही मन्त्रपाठ प्रारम्भ करे।

१६—धूप वाजार न खरीदे, शोध कर अपने घर पर ही बनावे।

१७—तिलक लगावे।

१८—घृत का दीपक बराबर जलाते

१९—मन्त्र प्रारम्भ करने मे पूर्व प्रतिदिन अङ्गशुद्धि एव सकलीकरण अवश्य करे।

२०—चोटी मे गाठ अवश्य लगा लेवे।

२१—वार वार आसन न वदले। एक ही आसन से बैठ कर मन्त्र की साधना करे।

२२—जपसमाप्ति के वाद हवन करे पश्चात् श्रावक श्राविकाओ को भोजन करावे।

कल्याणमन्दिर की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास

[आज के संसार का स्तर यह है कि उसका बुद्धिवाद सहसा 'चमत्कार' शब्द स्वीकार नही करता। करे भी क्यो? चमत्कार का सीधा सम्बन्ध 'श्रद्धा' से है—बुद्धि से नही। वह श्रद्धा—जिसे जिनपरिभाषा मे सम्यक्त्व कहा जाता है संसार से निरन्तर उठती जा रही है इसीलिये ये पौराणिक चमत्कार किसी समय भले ही इतिहास की जीवित घटनाएं रही हो—पर आज तो उन पर दन्तकथा ही होने का आरोप किया जाता है . . ।

कल्याणमन्दिर स्तोत्र की उत्पत्ति की पीठिका भी एक ऐसी ही चमत्कारिक घटना है। जिसे निम्न कहानी मे परिलक्षित किया है। यद्यपि इस कहानी से कल्याणमन्दिर के कर्त्ता के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश नही पडता तथापि उनके एकदेश जीवन का सम्बन्ध इस कथानक से भलीभाति प्रकट होता है।]

[१]

ब्राह्ममुहूर्त्त की वेला है, शिवालयो मे शङ्खनाद और घण्टानाद आरम्भ हो गये हैं। जो कसौटी पर कसे हुये भक्त हैं वही केवल इस शीत मे उत्तरीय ओढे और अपनी लम्बी चोटी मे गाठ लगाये तेजी से नर्मदातट की ओर बढे जा रहे हैं। इन्ही भक्तो मे से एक वह है जो नित्यप्रति "गायत्री" का पाठ करता हुआ आज भी अपनी निराली पगडडी पर पग बढाये चला जा रहा है। ..

[२]

आत्मशक्ति का तेज छिपाये छिपता नही, यही कारण है कि उज्जयिनी नगरी मे रहते हुये यद्यपि इन्हे अधिक समय नही हुआ तथापि ख्यातिवैभव इनके चरणो मे लोटने लगा और एक दिन वह आया कि वे विक्रमादित्य नरेश के राज्य-दरबार के ऐतिहासिक नवरत्नो मे से 'क्षपणक' नामक एक उज्ज्वल रत्न बन बैठ। कैसे ? उसका भी एक रहस्य है ।

❀ ❀ ❀

पीछे २ प्रजा का विशाल जनसमूह तथा सब से आगे राजा विक्रमादित्य एक विभूषित मातङ्ग पर आरूढ होकर चले जा रहे थे और दूसरी ओर से अपने मे लीन, राजकीय आतङ्क से निर्भीक एक निस्पृह साधु। राजा शिवभक्त होकर भी सर्वधर्म समभावी था ही, परीक्षा के हेतु मन ही मन नमस्कार कर लिया। बस क्या था ? आत्मा का बेतार के तार का करट पवित्र आत्मा तक पहुँच गया और 'धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद अनायास ही उनके मुख से जोर से निकल पडा।

[३]

राजकीय कार्य से कुमुदचन्द्र जी को चित्तौडगढ जाना पडा, मार्ग मे श्री पार्श्वनाथ जी का एक जैन मन्दिर देख कर ज्योही वे दर्शनार्थ घुसे कि एक स्तम्भ पर उनकी दृष्टि पडी। स्तम्भ एक ओर से खुलता भी था। इन्होने उसे खोलने का उद्योग किया किन्तु सफलता मे विलम्ब लगा। निदान उसी पर लिखित गुप्त सकेतानुसार उन्होने कुछ औषधियो के सहारे उसे खोल लिया तथा उसमे रखे हुए अटूट चमत्कारी शास्त्र देखे। एक पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् ज्योही वे दूसरा पृष्ठ पढने लगे

त्योंही अदृश्य वाणी हुई कि दूसरा पृष्ठ तुम्हारे भाग्य मे नहीं है और स्तम्भकपाट पुन पूर्ववत् वन्द हो गया । अस्तु जितना मिला उतना ही क्या कम था, जो आगे जाकर कल्याण-मन्दिर की भक्तिरस पूर्ण चमत्कार सिद्धि मे कारण बना। यह घटना एक ऐसी घटना थी जो अक्सर उनके आत्मस्थैर्य के समय उनकी आँखो मे चित्रपट के समान अङ्कित हो जाया करती थी।

[४]

महाकालेश्वर का विशाल प्राङ्गण—जहां करोडो की सख्या मे आज शैव और शाक्त बैठे हैं, नानाप्रकार के वैदिक यौगिक चमत्कारो का जिन्हे गर्व है। वे देखना चाहते हैं कि यह क्षपणक हम से वढियां ऐसा कौनसा चमत्कार दिखलाने का दावा कर रहा है, तथाकथित आठो रत्न इसलिये प्रसन्न हैं कि आज उन्हे उनके अपने ही द्वारा पाली हुई ईर्ष्या का साकाररूप देखने का सुयोग प्राप्त हो रहा है। उज्जयिनी नरेश विवेकी और परीक्षाप्रधानी थे। प्राभाविक शक्तियां ही उन्हे अपने वश मे कर सकती थी। हां, तो देदीप्यमान चेहरा अपनी ओर बढता देख मानो शिवमूर्ति निस्तेज पडने लगी थी। राजा का सकेत पाकर कपिल द्विज बोला—"तो क्षपणक जी करिये न नमस्कार शिवजी को, देखें आपका आत्मवैभव।"

श्रद्धा वास्तव मे बलवती होती है, उसके आगे सोचने या विचारने का कोई मूल्य नही। बस आचार्य जी की आँखो से वही चित्तौडगढ का भव्य जिनमन्दिर उसमे विराजमान वही सौम्यमूर्ति पार्श्वनाथ जी का बिम्ब, वही स्तम्भ और वही चमत्कारी पृष्ठ उस शिवमूर्ति के स्थान मे दिखाई देने लगे।। एकाएक उनके मुँह से भक्ति के आवेश मे निम्न-श्लोक निकल पडा—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दु खपात्र,
यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या ॥
— कल्याणमन्दिर श्लोक न० ३८

इन भक्तिरस पूर्ण पक्तियो मे कहिये अथवा आचार्य श्री के उस पौद्गलिक वाणी मे कहिये, कौन से ऐसे तत्त्व भरे थे, जिन्होने कि उस समस्त विशाल जनसमूह को एक वारगो ही मन्त्रमुग्ध सा कर लिया। सब के नेत्र उसी एक व्यक्ति पर ही गडे थे, उस मूर्ति की ओर कोई नही देखता था, जिसका कि एक २ परमाणु वीतराग मुद्रा मे परिणत होने लग गया था। हाँ, समुदाय के चर्मचक्षु तो उस समय उस ओर मुडे जबकि सर्वाङ्ग पूण मुद्रा के प्रकाश पुञ्ज की तेज रश्मियाँ उनके पलको से जा भिडी और फिर दाँतो तले अगुली दबाने के सिवाय उन्हे रह ही क्या गया था, जो कि वास्तव मे दयनीय था।

परिणाम यह हुआ कि राजा समेत सभी उपस्थित जनता तत्काल समीचीन जैन-धम की अनुयायिनी हो गई। ओकारेश्वर का विशाल महाकालेश्वर का मन्दिर इसका ज्वलन्त प्रतीक है।

समयानुसार राजा की प्रेरणा पाकर श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी ने भक्तिरस से ओतप्रोत इस कलापूर्ण अद्वितीय चमत्कारी कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना कर जन साधारण का महान कल्याण किया।

श्री पार्श्वनाथाय नम

कल्याण मंदिर स्तोत्र

मङ्गलाचरण

श्रेयसिन्धु कल्याणकर, कृत निज पर कल्याण ।
पार्श्व पचकल्याणमय, करो विश्व-कल्याण ॥

अभीप्सितकार्य सिद्धिदायक

कल्यामन्दिरमुदारमवद्यभेदि-
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
ससारसागर-निमज्जदशेषजन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥
यस्य स्वय सुरगुरु र्गरिमाम्बुराशे:,
स्तोत्र सुविस्तृतमति र्न विभु विधातुम् ।

१—कल्याणमन्दिर स्तोत्र के श्लोकों के ऊपर जो शीर्षक दिये गये हैं व देहली की प्रति के [illegible] के अनुसार लिखे गये हैं ।

तीर्थेश्वरस्य 'कमठ' स्मयधूमकेतो--
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥
—(युग्मम्)

अनुपम करुणा की सु-मूर्ति शुभ, शिव मन्दिर अघनाशक मूल।
भयाकुलित व्याकुल मानव के, अभयप्रदाता अति-अनुकूल ॥
बिन कारन भवि जीवन तारन, भवसमुद्र मे यान-समान।
ऐसे पाद-पद्म प्रभु पारस के अर्चू मैं नित अम्लान॥
जिसकी अनुपम गुणगरिमा का, अम्बुराशि सा है विस्तार।
यश-सौरभ सु-ज्ञान आदि का, सुरगुरु भी नहिं पाता पार॥
हठी कमठ शठ के मदमर्दन, को जो धूमकेतु-सा शूर।
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी तीर्थपति की भरपूर॥

श्लोकार्थ—हे विश्वगुणभूषण! कल्याणो के मन्दिर, अत्यन्त उदार, अपने और औरो के पापो के नाशक, ससार

१—द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं, त्रिभि श्लोकैः विशेषकम्।
कलापकं चतुर्भि स्यात्—तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्॥

अर्थ—जहाँ दो श्लोको मे क्रिया का अन्वय हो उसे युग्म, तीन श्लोको मे क्रिया का अन्वय हो उसे विशेषक, चार श्लोको मे क्रिया का अन्वय हो उसे कलापक और इसीभाति जहाँ पांच छह सात आदि श्लोको मे क्रिया का अन्वय हो उसे कुलक कहते हैं।

नोट—इस स्तोत्र मे अन्तिम श्लोक को छोड कर सर्वत्र "वसन्ततिलका" छन्द है।

२—मोक्ष या कल्याण [कल्याणमक्षयस्वर्गे–इति विश्वलोचन कोषे पृ० १०७ श्लोक ४१] ३—जहाज। ४—देवताओ का मन्त्री या इन्द्र के समान बुद्धिमान।

के दु खो मे डरने वालो के अभयप्रद, अतिश्रेष्ठ, ससार-सागर मे डूबते हुये प्राणियो के उद्धारक, श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरण-कमलो को नमस्कार करके गम्भीरता के समुद्र, जिसकी स्तुति करने के लिये विशालबुद्धि वाला देवताओ का गुरु स्वय वृहस्पति भी समर्थ नही है, तथा जो प्रतापी कमठ के अभिमान को भस्मीभूत करने के लिये धूमकेतु अर्थात् सपुच्छग्रह (पुच्छलतारा) रूप है, उन तेईसवे तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान का मुझ जैसा अल्पज्ञ स्तवन करता है यह आश्चर्य है ! ।। १ ।। २ ।।

निर्भयकरन परम परधान, भव-समुद्र जलतारन जान ।।
शिवमन्दिर अघहरन अनिन्द, वन्दहु पास चरन-अरविन्द ।।
कमठमान-भजन वरवीर, गरिमासागर गुनगम्भीर ।।
सुरगुरु पार लहैं नहिं जासु, मै अजान जपो जस तासु ।।

श्लोक १-२—ऋद्धि ॐ ह्री अर्हं णमो इठुकज्जसिद्धिपराण १जिणाण ऋ ह्री अर्हं णमो दव्वकराण २ ओहिजिणाण ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवओ रिसहस्स तस्स पडिनिमित्तेण चरणपण्णत्ति इन्देण भणामइ यमेण उप्पाडिया जीहा कठोठ्ठ-मुहतालुया खीलिया जो म भसइ जो म हसइ दुठ्ठदिठ्ठीए वज्जसिखलाए [३ देवदत्तस्स] मण हियय कोह जीहा खीलिया मेलखियाए ल ल ल ल ठ ठ ठ स्वाहा ।

[—भैरवपद्मावतीकल्पे अ ८ श्लोक ८]

विधि—श्रद्धापूर्वक उक्त मन्त्र को १०८ वार जपने के पश्चात् प्रतिवादी से वाद-विवाद करने पर जप करने वाले

१—जिन भगवान को नमस्कार हो ।
२—अवधिज्ञानी जिनो को नमस्कार हो । ३—अमुकस्य ।

की विजय होती है। निश्चयपूर्वक प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है और उसका पराजय होता है।

ॐ ह्री कमठस्य धूमकेतूपमाय श्रीजिनाय नम ।

The poet declares his intention of praising Lord Parsvanatha

Having bowed to the lotus feet of that Jineshvara (Tirtnankara, Lord Parsvanatha), who is the ocean of gregtness, whom (even) the preceptor of Gops (Brihaspati) himself in spite of niss upremely wide knowledge is unable to praise and who is a comet (or fire) in destroying the arrogance of Kamatha– the feet which are, the temple of bliss' which are sublime, which can destroy sins and give safety to the terrified, which are are fault less and (i e . serva the purpose of) a life-boat for all beings sinking in the ocean of existence, I will indeed compose a hymn (in honour) of Him (1–2)

जलभय-निवारक

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितु स्वरूप--
मस्मादृशा कथमधीश ! भवन्त्यधीशा ।१।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशु र्यदि वा दिवान्धो,
रूप प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मे ? ।।३।।

अगम अथाह सुखद शुभ सुन्दर, सत्स्वरूप तेरा अखिलेश ! ।
क्यों करि कह सकता है मुझसा, मन्दबुद्धि मूरख करुणेश ! ॥
सूर्योदय होने पर जिसको, दिखता निज का १गात नहीं ।
२दिवाकीर्ति क्या कथन करेगा, ३मार्तण्ड का नाथ ! कहीं ? ॥

श्लोकार्थ – हे सप्तभयविनाशक देव ! आपके गुणों का सामान्यरूप से भी वर्णन करने के लिये हम सरीखे मन्दबुद्धि वाले पुरुष कैसे समर्थ हो सकते है ? अर्थात् नहीं हो सकते। जैसे जिसे दिन में स्वयं नहीं सूझता ऐसा उलूक (उल्लू) पक्षी का बच्चा धीट होकर भी क्या सूर्य के जगमगाते बिम्ब का वर्णन कर सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं कर सकता ॥३॥

प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह, क्यों हमसे इह होय निवाह ।
ज्यों दिन अंध उलूको ४पोत, कहि न सके रविकिरन उद्योत ॥

३–ऋद्धि–ॐ ह्रीं अर्हंणमो ममुद्दभयसामणबुद्धीण५परमोहिजिणाण

मंत्र– ॐ ह्रीं हरक्ली वगलामुखी देवी नित्ये ! क्लिन्ने ! मदद्रवे ! मदनातुरे ! वषट् स्वाहा ।

विधि – पुष्यनक्षत्र के योग में इस महामन्त्र का २१ दिन तक १२००० जाप पूरा करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्याधीशाय नमः ।

He points out his incompetency to under take such a work

Oh Lord ! how can persons like us succeed in giving even a general outline

---

१ – शरीर । २—उल्लू नाम का पक्षी (दिवाकीर्ति उलूके स्यात्- वि० लो० कोप पृ० १५८ श्लोक २१५) । ३—सूर्य । ४—बच्चा ।
५ परमावधिज्ञानधारी जिनो को नमस्कार हो ।

of Thy nature ? Is indeed a young-one of an owl blind by day capble of describing the orb of the hot-rayed one (sun), however presumptuous it may be ? (3)

असमयनिधननिवारक

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ? ।।४।।

यद्यपि अनुभव करता है नर, १मोहनीय—विधि के क्षय से ।
तौ भी गिन न सकै गुण तुव सब, २मोहेतर—कर्मोदय से ।
३प्रलयकाल मे जब जलनिधिका, वह जाता है सब पानी पानी ।
रत्नराशि दिखन पर भी क्या, गिन सकता कोई ज्ञानी ? ।।

श्लोकार्थ—हे अनन्तगुणनिध ! जैसे प्रलयकाल के समय सब पानी निकल जाने पर भी साफ दिखने वाले समुद्र के रत्नो की गणना नही हो सकती, वैसे ही मोहाभाव से प्रतिभासमान आपके गुणो की गिनती भी किसी भी मनुष्य द्वारा नही हो सकती, क्योकि आपके गुण अनन्तानन्त हैं ।।४।।

मोहहीन जानै मन माहि, तोउ न तुम गुन बरनै जाहिं ।।
प्रलय-पयोधि करै जल ४वौन, प्रगटहिं रतन गिनै तिहि कौन ।।

१—वह कर्म जो आत्मा को भुलाये रखता है और सद्बोध प्राप्त नही होने देता । २—ज्ञानावरणादि अन्य कर्म । ३—कल्पान्तकाल या परिवर्तनकाल । ४—वमन ।

४ ऋद्धि-ॐह्रीअर्हंणमोअकालमिच्चुवारयाण[1]सव्वोहिजिणाण।

मन्त्र ॐ नमो भगवति ॐ ह्री श्री क्ली अर्हं नम स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र को ९ वर्ष तक हर वर्ष लगातार ४० रविवार के दिन प्रति रविवार को १००० वार जपने से गर्भपात और अकालमरण नही होता।

ॐह्री सवपीडानिवारकाय श्रीजिनाय नम ।

He suggests that even the omniscient cannot enumerate Thy virtues

Oh Lord ! a mortal is surely incapable of counting Thy merits, in spite of his realizing them, owing to the annihilation of his infatution, (for), who can measure the heap of jewels, though obvious, in the ocean emptied of waters at the time of the destruction of the universe ? (4)

प्रच्छन्न धनप्रदर्शक

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तव लसदसख्यगुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुग वितत्य,
विस्तीर्णता कथयति स्वधियाम्बुराशे ? ॥५॥

१—सर्वावधिज्ञानधारी जिनो को नमस्कार हो।

तुम अतिसुन्दर शुद्ध अपरिमित, गुणरत्नो की खानिस्वरूप ।
वचननि करि कहने को [1]उमगा, अल्पबुद्धि मै तेरा [2]रूप ॥
यथा मन्दमति लघुशिशु अपने, दोऊकर को कहै पसार ।
जल-निधि को देखहु रे मानव, है इसका इतना [3]आकार ॥

श्लोकार्थ—हे गुणगणाधिप ! जैसे शक्तिहीन अबोध बालक सहज स्वभाव से अपनी पतली छोटी २ दोनो भुजाओ को पसार कर विशाल समुद्र के विस्तार (फैलाव) को बतलाने का असफल प्रयत्न करता है, ठीक वैसे ही हे भगवन् ! मैं महामूर्ख तथा जडबुद्धि वाला होकर भी अपूर्व अपरिमित गुणो से सुशोभित आपके सच्चिदानन्द स्वरूप की अमर्यादित महिमा का वर्णन करने के लिये उद्यत हो गया हूँ ॥५॥

तुम असख्य निर्मल गुण खानि । मै मतिहीन कहौं निज वानि ॥
ज्यो बालक निज बाह पसार । सागर परिमित कहे विचार ॥
५ ऋद्धि-ॐ ह्री अर्ह णमो गोधणवुड्ढिकराण [4]अणतोहिजिणाण ।
मन्त्र-ॐ ह्री श्री क्ली ब्लूं अर्ह नम ।

विधि—प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक १०८ वार ऋद्धि और मत्र की जाप जपने से गुमी हुई मवेशी, लक्ष्मी तथा धन का लाभ होता है ।
ॐ ह्री सुखविधायकाय श्री पार्श्वनाथाय नम ।

He mentions one by one the reasons of Commencing the hymn

Oh Lord ! I, though dull-witted, have started to sing a song of Thine, the mine of

---

१—उत्साहित हुआ । २–स्वरूप या स्वभाव । ३–विस्तार या फैलाव ।
४—अनन्त अवधिज्ञान वाले जिनो को नमस्कार हो ।

innumerable resplendent virtues (For) does not even a child describe according to its own intellect the vastness of the ocean by stretching its arms ? (5)

सन्तानसम्पत्ति प्रसाधक

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाश. ।
जाता तदेव-मसमीक्षित—कारितेयं,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

हे प्रभु ! तेरे अनुपम सब गुण, मुनिजन कहने मे असमर्थ ।
मुझसा मूरख औ अवोध क्या, कहने को हो सके समर्थ ॥
पुनरपि भक्तिभाव से प्रेरित, प्रभु-स्तुती को विना विचार ।
करता हूँ, पक्षी ज्यो बोलत, निश्चित वोली के अनुसार ॥

श्लोकार्थ—हे गुणगणालंकृतदेव ! आपके जिन अपरिमित गुणो का वर्णन करने मे वडे-वडे योगी और धुरन्धर विद्वान तक अपने आपको असमर्थ मानते है, उन गुणो का वर्णन मुझ जैसा अल्पज्ञ मानव कैसे कर सकता है ? अत स्तवन प्रारम्भ करने के पूर्व अपनी शक्ति को न तौल कर मैंने आपकी जो स्तुति प्रारम्भ की है, वास्तव मे मेरा यह प्रयत्न विना विचारे ही हुआ, फिर भी मानवजाति की वाणी वोलने मे असमर्थ पशु पक्षी अपनी ही वोली मे वोला करते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी वोली मे आपकी प्रभावशालिनी, पुण्यदायिनी स्तुति करने के लिये प्रवृत्त होता हूँ ॥ ६ ॥

जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद, तऊँ न जानहिं तुम गुन भेद।
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख,ज्यो पखी बोलहिं निज भाख[१]॥

६ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो पुत्तडत्थिकराण[२] कोठ्ठबुद्धीण।

मत्र—ॐ नमो भगवति! अम्बिके! अम्बालिके! यक्षीदेवि यूं यौं ब्लें ह्म्ल्की ब्ल ह्सौं र र र रा रा दृष्टि प्रत्यक्ष मम देवदत्तस्य वश्य कुरु कुरु स्वाहा।

(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० ६ श्लो० २)

विधि—इस मत्र से २१ वार दातोन मन्त्रित कर उसी से दात साफ करे पश्चात् २१ वार श्रद्धापूर्वक मत्र का जाप जपने से इच्छित मनुष्य वश मे होता है।

ॐ ह्रीं अव्यक्तगुणाय श्री जिनाय नम।

Oh Lord! whence can it be within my scop to describe Thy merits, when even the masterly saints fail to do so? Therefore, this attempt of mine is a thoughtless act, or why, *even birds do speak in their own tongue* (6)

अभीप्सितजनाकर्षक

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! सस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरस सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

१—भाषा। २—कोष्ठबुद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

है अचिन्त्य महिमा स्तुती की, वह तो रहे आपकी दूर।
जब कि बचाता भव-दु खो से, मात्र आपका 'नाम' जरूर॥
ग्रीष्म कु-ऋतु के तीव्र ताप से, पीडित पन्थी[1] हुये अधीर।
पद्म-सरोवर दूर रहे पर,तोषित करता सरस-समीर[2]॥

श्लोकार्थ—हे सातिशयनामन् ! जैसे ग्रीष्मकाल मे असह्य प्रचण्ड धूप से व्याकुल राहगीरो को केवल कमलो से युक्त सरोवर ही सुखदायक नही होते, अपितु उन जलाशयो की जल-कण-मिश्रित ठडी २ झकोरे भी सुखकर प्रतीत होती है। वैसे ही हे प्रभो! आपका स्तवन ही प्रभावशाली नही है, वरन आपके पवित्र 'नाम' का स्मरण भी जगत के जीवों को ससार के दारुण दु खो से बचा लेता है। वास्तव मे प्रभु के गुणगान और उनके नाम की महिमा अचिन्त्य है ॥७॥

तुम जस महिमा अगम अपार, नाम एक त्रिभुवन आधार।
आवे पवन पद्मसर[3] होय, ग्रीषम तपन निवारै सोय॥

७ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो अभिठुसाधयाण बीजवुद्धीण[4]।

मत्र—ॐ नमो भगवओ आरठुणेमिस्स बधेण बधामि रक्खसाण,भूयाण खेयराण,चोराण,दाढाण साईणीण, महोरगार्ण अण्णे जेवि दुठ्ठा सभवन्ति तेसिं सव्वेसि मण मुह गइ दिठ्ठी बधामि धणु धणु महाधणु ज ज (ज ?) ठ ठ. ठ हु फट् (स्वाहा ?)

—(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० ७ श्लोक १७)

विधि—गहन वन के कठिन मार्ग पर चलते हुए भय उत्पन्न होने पर इस मत्र द्वारा कुछ ककरो को मन्त्रित कर

१—राहगीर। २ हवा। ३ - कमलयुक्त सरोवर।
४—बीजबुद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो।

चारो दिशाओ मे फेंकने से चोर, सिंह, सर्पादि का भय दूर होता है।

ॐ ह्रीं भवाटवीनिवारकाय श्रीजिनाय नमः ।

God's name brings to an end the cycle of briths and deaths—

Oh Jina ! Let Thy hymn whose sublimity is inconceivable be out of considaration, (for), even Thy name saves the (living beings of the) three worlds from (this) worldly existence Even the cool breeze of a lotus-lake gives delight in summer to the travellers tormented by the immense heat (of the sun) (7)

कुपितोपद्रवविनाशक

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तो क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धा ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग –
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

मन-मन्दिर मे वास करहिं जब, अश्वसेन—वामा—नन्दन ।
ढीले पड जाते कर्मों के, क्षण भर मे दृढतर बन्धन ॥
चन्दन के विटपों[१] पर लिपटे, हों काले विकराल भुजङ्ग[२] ।
वन-मयूर के आते ही ज्यो, होते उनके शिथिलित अङ्ग ॥

१—वृक्षों । २—सर्प ।

श्लोकार्थ—हे कर्मबन्धनविमुक्त ! जिनेश ! जसे जगली मयूरो के आते ही मलयागिरि के सुगन्धित चन्दन के सघन वृक्षो मे कोडराकार लिपटे हुए भयङ्कर भुजङ्गो की दृढ कुण्डलियाँ तत्काल ढाली पड जाती है, वैसे ही ससारी जीवो के मन-मन्दिरो के उच्च सिहासनो पर आपके विराजमान होने पर—आपका 'नाम-मत्र' स्मरण करने पर उनके ज्ञाना-वरणादि अष्टकर्मो के कठोरतम बन्धन क्षणमात्र मे अनायास ही ढीले पड जाते है ॥८॥

तुम आवत भविजन मन माहिं, कर्मनिवध शिथिल हो जाहिं।
ज्यो चन्दनतरु वोलहिं मोर, डरहिं भुजङ्ग लगे चहुँओर ॥

८ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो उण्हगदहारीण पादाणुसारीण[1]।

मत्र—ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथतीर्थङ्कराय हस महा-हस' पद्महस शिवहस' कोपहस उरगेशहस पक्षि महाविषभक्षि हुँ फट् (स्वाहा ?)

—(भैरवपद्मावतीकल्पे अ० १० श्लो० २९)

विधि—इस मत्र को प्रतिदिन १०८ वार जप कर सिद्ध करे। पश्चात् सर्प डसे आदमी पर प्रयोग करे। अर्थात् मत्र पढते हुए झाडा देने से जहर दूर होता है।

ॐ ह्री कर्माहिवन्धमोचनाय श्रीजिनाय नम.।

He mentions the result of contemplating God

Oh Lord ! when Thou art enshrined in the heart by a living being, his firm fetters of

---

१—पादानुसारी ऋद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो।

Karmans, however tight they may become certainly loose within a moment like the serpent-bands of a sandal tree, immediately when a wild peacock arrives at its centre (8)

सर्पवृश्चिकविषविनाशक

मुच्यन्त एव मनुजा सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशव प्रपलायमानैः ॥६॥

बहु विपदाएँ प्रबल वेग से, करें सामना यदि भरपूर।
प्रभु-दर्शन से निमिषमात्र मे, हो जाती वे चकनाचूर ॥
जैसे गो-पालक[1] दिखते ही, पशु-कुल को तज देते चोर।
भयाकुलित हो करके भागें, सहसा समझ हुआ अब भोर[2]॥

श्लोकार्थ—हे सकटमोचन । जिस तरह प्रचण्ड सूर्य, पराक्रमी भूपाल तथा बलिष्ठ गो-पालको (ग्वालो) के दिखते ही भय से शीघ्र भागते हुए चोरो के पजे से पशु-धन छूट जाता है, उसी तरह हे कृपालुदेव ! आपकी वीतराग मुद्रा को देखते ही मानव महा-भयङ्कर सैकडो सकटो से तत्काल छुटकारा पाते हैं।

तुम निरखत जन दीनदयाल, सकट ते छूटहिं तत्काल।
ज्यो पशु घेर लेहिं निशि चोर, ते तज भागहिं देखत भोर॥

१—गायो का स्वामी (ग्वाल), तेजस्वी सूर्य तथा प्रतापी राजा । २—प्रात काल ।

६ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्ह णमो विसहरविसविणासयाण [1]सभिण्णसोदाराण ।

मत्र—ॐ इदसेणा महाविज्जा देवलोगाग्रो आगया दिट्ठिवधण करिस्सामि भडाण भूआण अहिण दाढीण सिगीण चोराण चारियाण जोहाण वग्घाण सिहाण भूयाण गधव्वाण महोरगाण अन्नेसि (अण्णे वि ?) दुट्ठसत्ताण दिट्ठिवधण मुहवधण करेमि ॐ इदनरिंदे स्वाहा ।

विधि—दीवाली के दिन निराहार रह कर १०८ वार इस मत्र का जाप करे । पश्चात् मार्ग मे चलते हुए इस मत्र को २१ वार बोलने से सब प्रकार का भय तथा उपद्रवो का नाश होता है ।

ॐ ह्री सर्वोपद्रवहरणाय श्रीजिनाय नम ।

He points out advantage of seeing God

Oh Lord of the Jinas ! No sooner art Thou merely seen by persons, than they are indeed spontaneously released from hundreds of horrible adversities, like the beasts from the thieves that are fleeing away at the mere sight of (1) the sun resplendent with lustre, (2) the king or (3) the cowherd shining with valour (9)

१—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो ।

गया आपका चिन्तवन ही कारण है। इसलिए हे भगवन् ! आप भवपयोधितारक कहलाते हैं।

तू भविजन तारक किम होह, ते चित्त धारि तिरहिं लै तोह।
यह ऐसे कर जान स्वभाउ, तिरै मसक ज्यो गर्भितवाउ[1] ॥

१० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो लक्खरभयपणासयाण उजुमदीण[2]।

मन्त्र—ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी चक्रधारिणी जलजलनिहि-पारउतारणि जल थभय दुष्टान् दैत्यान् दारय दारय असि-वोपसम कुरु कुरु ॐ ठ ठ (ठ ?) स्वाहा।

विधि—गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र का योग पडने पर इस मन्त्र को शुद्ध हृदय से १०८ वार जप कर सिद्ध करे। पश्चात् कार्य पडने पर २१ वार मन्त्र का आराधन करने से हर तरह के पानी का भय नष्ट होता है।

ॐ ह्रीं भवोदधितारकाय श्रीजिनाय नम ।

He suggests the advantage of consiant contemplation about God

Oh Jina ! How art Thou the saviour of mundane beings when (on the contrary) they themselves carry Thee in their hearts while crosing (the ocean of existence) ? Or indeed, that a leatner baq (for holding water) floats in

---

१—हवा। २—ऋजुमति मन पर्यय-ज्ञानधारी जिनो को नमस्कार हो।

water, is certainly the effect of the air inside it (10)

जलाग्निभयविनाशक

यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावा,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ? ॥११

जिसने हरिहरादि देवो का, खोया यश-गौरव-सन्मान ।
उस मन्मथ[1] का हे प्रभु ! तुमने, क्षण मे मेट दिया अभिमान ॥
सच है जिस जल ने पल भर मे, दावानल[2] हो जाता शान्त ।
क्यो न जला देता उस जल को ?, वडवानल[3] होकर अश्रान्त ॥

श्लोकार्थ—हे अनङ्गविजयिन् ! जिस काम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि प्रख्यात पुरुषो को पराजित कर जन साधारण की दृष्टि मे प्रभावहीन बना दिया है। हे जितेन्द्रिय जिनेन्द्र ! उसी काम (विषय वासनाओ) को आपने क्षण भर मे नष्ट कर दिया, यह कोई आश्चर्य का बात नहीं है, क्योकि जो जल प्रचण्ड अग्नि को बुझाने की सामर्थ्य रखता है, वह जल जब समुद्र मे पहुँच कर एकत्र हो जाता है तब क्या वह अपने ही उदर मे उत्पन्न हुए वडवानल (सामुद्रिक अग्नि) द्वारा नही सोख लिया जाता ? अर्थात् नहीं जला दिया जाता ? ॥ ११ ॥

१—कामदेव २—जगल की भयानक अग्नि । ३—सामुद्रिक अग्नि जो समुद्र के मध्यभाग से उत्पन्न होकर अपार जलराशि का शोषण कर लेती है ।

भावार्थ—जैसे कि जल अग्नि को बुझाता है, लेकिन उसी जल को बडवानल सोख लेता है, वैसे ही हे भगवन् ! जिस काम ने हरिहरादिक देवो को जीत लिया है, उसी काम को आपने क्षण भर मे पराजित किया है।

जिन सब देव किये वस वाम, तै छिन मे जीत्यो सो काम।
ज्यो जल करै अग्निकुलहानि, बडवानल पीवै सो पानि ॥

११ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो वारियालणवुद्धीण विउलमदीण[1]।

मत्र—ॐ नमो भगवति अग्निस्तम्भिनि ! पञ्चदिव्योत्तरणि ! श्रेयस्करि ! प्रज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वकामार्थसाधनि ! ॐ अनलपिङ्गलोर्ध्वकेशिनि ! महाविव्याधिपतये स्वाहा।

विधि—इस महामत्र को भोजपत्र पर केशर अथवा हरताल से लिखकर उसे बढती हुई अग्नि मे डालने से तज्जन्य उपद्रव शान्त होता है।

ॐ ह्री हुतभुग्भयनिवारकाय श्री जिनाय नम। श्री फलवर्द्धिपार्श्व (नाथ ?) स्वामिने नम।

He establishes the pre-eminence of Lord Parsva in virtue of His dispassion

Even that Cupid (the husband of Rati) who baffled even Harr (Siva) and others was destroyed within a moment by Thee (For), is not even that water which extinguishes (earthly)

conflagrations swallowed up by the irresistible submarine fire ? (11)

अग्निभय विनाशक

स्वा[१] मिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना—
स्त्वां जन्तव कथमहो हृदये दधाना ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभाव ॥१२

छोटी सी मन की कुटिया मे, हे प्रभु ! तेरा ज्ञान अपार ।
धार उसे कैसे जा सकते, भविजन भव-सागर के पार ? ॥
पर लघुता[३] मे वे तिर जाते, दीर्घभार से डूबत नाहिं ।
प्रभु की महिमा ही अचिन्त्य है, जिसे न कवि कह सकें वनाहिं ॥

श्लोकार्थ—हे त्रैलोक्यतिलक ! जिसकी तुलना किसी दूसरे से नहीं दी जा सकती, अथवा विश्व मे जिसकी बराबरी कोई नही कर सकता, ऐसे अतिगौरव को प्राप्त (अनन्त गुणो के बोझीले भार से युक्त) आपको हृदय मे धारण कर यह जीव ससार-सागर से अतिशीघ्र कैसे तर जाता है ? अथवा आश्चर्य की बात है, कि महापुरुषो की महिमा चिन्तवन मे नही आ सकती ॥ १२ ॥

तुम अनन्त गरुवा[४] गुन लिये, क्योंकर भक्ति धरूं निज हिये ।
ह्वै लघुरूप तिरहिं ससार, यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥

१—विपुलमतिमन पर्यय ज्ञानी जिनो को नमस्कार हो।
२—स्वामिन्नतुल्यगरिमाणमपि इत्यपि पाठ । ३ - सरलता से।
४— महान ।

१२—ॐ ह्री अर्हणमो अणलभयवज्जयाणा दसपुव्वीण[1]।

मत्र—ॐ ह्रा ह्री ह्रू ह्रे ह्रौ ह्र असिआउसा वाछित मे कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस महामंत्र का १२५००० सवा लाख बार जप करने से समस्त मनोवाछित कार्यों की सिद्धि होती है।

Power of the great is unimaginable

Oh Master! How do the beings who resort to Thee soon cross the ocean of births (and deaths) with the greatest ease, when they carry in their heart, Thee, that excessively h e a v y (dignified)? Or why, prowess of the great is incomprehensible (12)

जलमिष्टताकारक

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथम निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा [2]बद कथ किल कर्मचौरा ?।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरा ऽपि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न कि हिमानी ?॥१३

क्रोध-शत्रु को पूर्व [3]शमन कर, शान्त बनायो मन-आगार।
कर्म-चोर जीते फिर किस विध, हे प्रभु अचरज अपरम्पार॥

१—दशपूर्वधारी जिनो को नमस्कार हो। २—वत-इत्यपि पाठ। ३—नाश कर या खपा कर।

लेकिन मानव अपनी आँखो, देखहु यह [1]पटतर ससार।
क्यो न जला देता वन-उपवन, हिम-सा शीतलविकट[2]तुपार॥

श्लोकार्थ—हे कोपदमन ! यदि आपने अपने क्रोध को पहिले ही नष्ट कर दिया तो फिर आपही बतलाइये कि आपने क्रोध के बिना कर्मरूपी चोरो का कैसे नाश किया ? अथवा इस लोक मे बर्फ (तुपार) एकदम ठडा होने पर भी क्या हरे-हरे वृक्षो वाले वन-उपवनो को नही जला देता है ? अर्थात जला ही देता है ॥१३॥

क्रोध निवार कियो मन शान्त, कर्म सुभट जीते किहि भात ?॥
यह पटतर देखहु ससार, [3]नील विरख ज्यो दहै तुपार ॥

१३—ऋद्धि ॐ ह्री अर्हणमो रिवग्गभयवज्जयाण [4]चोद्दमपुव्वीण ।

मत्र—ॐ ह्री चमिआउसा सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय अधय अधय मूकय मूकय मोहय मोहय कुरु कुरु ह्री दुष्टान् ठ ठ ठ स्वाहा ।

विधि—पूर्व दिशा की ओर मुख करके किसी एकान्त स्थान मे बैठकर ८ या २१ दिन तक प्रतिदिन मुट्ठी बाँधकर इस मत्र का ११०० बार जप करने से सब तरह के दुष्ट-क्रूर व्यन्तरो के कष्टो से मुक्ति होती है ।

ॐ ह्री कर्मचौरविध्वसकाय श्री जिनाय नम ।

How couldst Thou indeed (manage to) destroy Karman-thieves, when Thou, oh Omni-present one ! hadst at the very

१—दृष्टान्त । २—पाला । ३—हरे वृक्ष । ४—चौदह पूर्वधारी जिनो को नमस्कार हो ।

outset annihilated anger ? Or why, does not the mass of snow though cold burn forests having dark-blue (or fig) trees ? (13)

शत्रुस्नेह जनक

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य[1] सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

शुद्धस्वरूप अमल अविनाशी, परमातम सम ध्यावहिं तोय ।
निजमन[2]कमल-कोष मधि ढूंढहि,सदा साधु तजि मिथ्या-मोह॥
अतिपवित्र निर्मल सु-कांति युत, कमलकर्णिका बिन नहिं और ।
निपजत कमलबीज उसमे ही, सब जग जानहिं और न ठौर ॥

श्लोकार्थ—हे तरण-तारण ! महर्षिजन परमात्मस्वरूप आपको सदा अपने हृदयाम्बुज के मध्यभाग मे अपने ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा खोजते है । ठीक ही है कि जिस प्रकार पवित्र, निर्मल कान्तियुक्त कमल के बीज का उत्पत्तिस्थान कमल की कर्णिका ही है, उसी प्रकार शुद्धात्मा के अन्वेषण का स्थान हृदय-कमल का मध्यभाग ही है ॥१४॥

मुनिजन हिये कमल निज टोहि, सिद्धरूपसम ध्यावहि तोहि ।
कमलकर्णिका बिन नहिं और, कमल-बीज उपजन की ठौर ।

१४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भसणभयभवणाण[3] अट्ठंग-महाणिमित्तकुसलाण ।

---

[1]—सम्भवि इत्यपि पाठ । [2]—खजाना । [3]—अष्टांगमहानिमित्तविद्या मे प्रवीण जिनो को नमस्कार हो ।

मंत्र—ॐ नमो मेरु महामेरु, ॐ नमो गौरी महागौरी, ॐ नमो काली महाकाली, ॐ (नमो) इदे महाइंदे, ॐ(नमो) जये महाजये, (ॐनमो विजये महाविजये), ॐ नमो पण्णसमणि महापण्णसमिणि अवतर अवतर देवि अवतर (अवतर)स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का ८००० बार जप करके मंत्र सिद्ध करे। तथा आईना को उक्त मंत्र से मंत्रित कर सफेद स्वच्छ पवित्र कपड़े पर रखे, फिर उसके सामने किसी कुवारी कन्या को सफेद वस्त्र पहिना कर बिठावे पश्चात् उससे जो बात पूछोगे उसका वह सच्चा उत्तर देगी।

ॐ ह्रीं हृदयाम्बुजान्वेषिताय (श्रीजिनाय) नमः।

Oh Jina ! the Yogins always search after Thee, the supreme soul in the interior of their heart-lotus-bud Or why, is there any other abode for the pure and the unsulliedly splendid lotusseed than the pericarp ? (14)

चोरिकागत द्रव्य दायक

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपल - भावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥

जिम कुधातु से सोना बनता तीव्र अग्नि का पाकर ताव।
शुद्ध स्वर्ण हो जाता जैसे, छोड उपलता पूर्व [1]विभाव॥

१— विकृत अवस्था।

वैसे ही प्रभु के सु-ध्यान से, वह परिणति आ जाती है।
जिसके द्वारा देह त्याग, परमात्मदशा पा जाती है ॥

श्लोकार्थ—हे अलौकिकज्ञानपुंज ! जैसे संसार में जिन धातुओं से सोना बनता है, वे नाना प्रकार की धातुएँ तेज अग्नि के ताप से अपने पूर्व पाषाणरूप पर्याय को छोड़कर शीघ्र स्वर्ण हो जाती हैं, वैसे ही आपके ध्यान से संसारी जीव क्षणमात्र में शरीर को छोड़ कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

जब तुह ध्यान धरे मुनि कोय, तब विदेह परमातम होय।
जैसे धातु शिलातन त्याग, कनकस्वरूप धवै जब आग ॥

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खरपणप्पयाण विउव्वणपत्ताण[1]।

मन्त्र—ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं, ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं, एकाहिक, द्वयाहिक, चातुर्थिक, महाज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, भयज्वर, कामज्वर, कलितरव, महावीरान्, बध बध ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।

विधि—इस अनादिनिधन महामन्त्र का मन में स्मरण करते हुए नूतन श्वेत वस्त्र के छोर में गाँठ बाँधे, उसको गूगल तथा घी की धूनी देवे, तदुपरान्त उस वस्त्र को ज्वरपीड़ित रोगी को उढ़ावे। मन्त्रित गाँठ रोगी के सिर के नीचे दबाने से सब तरह के ज्वर दूर होते हैं और रोगी को सुख की नींद आती है।

ॐ ह्रीं जन्ममरणरोगहराय (श्रीजिनाय) नमः।

१—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

Maditation of Jina leads to equality with Him.

Oh Lord of the Jina ! by mediting upon Thee, mundane beings attain in a moment the supreme status leaving aside their body, as is the case in this world with pieces of ore which soon cease to be stones and become gold by the application of severe heat (15)

गहन वन-पर्वत भय विनाशक

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ? ।
एतत् स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद् विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

जिस तन में भवि चिन्तन करते, उस तन को करते क्यों नष्ट ? ।
अथवा ऐसा ही स्वरूप है, है दृष्टान्त एक उत्कृष्ट ॥
जैसे [1]बीचवान बन सज्जन, बिना किये ही कुछ [2]आग्रह ।
झगड़े की जड़ प्रथम हटाकर, शान्त किया करते [3]विग्रह ॥

श्लोकार्थ—हे देवाधिदेव ! जिस शरीर के मध्य में स्थित करके भव्यजन सदैव आपका ध्यान करते हैं, उस शरीर को ही आप क्यों नाश करा देते हैं ? जिस शरीर में आपका ध्यान किया जाता है, आपको उसकी रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप इसके विपरीत करते हैं। अथवा ठीक ही है, कि

१—मध्यस्थ । २—अनुरोध । ३—विद्वेष या आपसी कलह ।

मध्यस्थ महानुभाव विग्रह (शरीर और कलह) को शान्त कर देते हैं। अतः आप भी ध्यान के समय ध्याता के शरीर के मध्य में स्थित होकर विग्रह अर्थात् शरीर को नष्ट कर देते हो अर्थात् आपके ध्यान से शरीर छूट जाता है और आत्मा मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

जाके मन तुम करहु निवास विनश जाय क्यों विग्रह तास ॥
ज्यों महन्त बिच आवै कोय, विग्रह मूल निवारै सोय ॥

१६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहणवणभयणाननयाण [1]विज्जाहराण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं पादौ रक्ष रक्ष. ॐ ह्रीं नमो सिद्धाण कटिं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो आयरियाण नाभिं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाण हृदयं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व-साहूण ब्रह्माण्डं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं एसो पंच [2]णमुक्कारो शिखां रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं सव्वपावप्पणासणो आसनं रक्ष रक्ष, ॐ ह्रीं मंगलाण च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं आत्मरक्षा पररक्षा हिलि-हिलि मातंगिनि स्वाहा ।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस महामन्त्र का प्रतिदिन जाप करने से कार्माणादि कर्मों का दोष दूर होता है ।

ॐ ह्रीं विग्रहनिवारकाय श्रीजिनाय नमः ।

Oh Jina ! How is it that Thou destroyest that very body of the Bhavyas in the interior of which they enshrine Thee ? Or why, this is the nature of an arbitrator (one who remains impartial):

१—विद्याधारी जिनो को नमस्कार हो। २—णमोक्कारो इत्यपि पाठः ।

for, great personages bring the discord (the body) to an end (or this is the nature for, great persons who are impartial, remove the quarrel) (16)

युद्धविग्रह विनाशक—

आत्मा मनीषिभिरय त्वदभेदबुद्धया,
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभाव।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमान,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥

हे जिनेन्द्र तुम मे अभेद रख, योगीजन निज को ध्यावे।
तव प्रभाव से तज विभाव वे, तेरे ही सम हो जाते॥
केवल जल को दृढ-श्रद्धा से, मानत है जो सुधासमान।
क्या न हटाता विष विकार वह, निश्चय से करने पर पान?॥

श्लोकार्थ—हे जिनेन्द्रदेव! जैसे पानी मे "यह अमृत है" ऐसा विश्वास करने से मत्रादि के सयोग से वह पानी भी विषविकारजन्य पीडा को नष्ट कर देता है। वैसे ही इस ससार मे योगीजन अभेदबुद्धि से जब आपका ध्यान करते है तब वे अपने आत्मा को आपके समान चिन्तवन करने से आप ही के समान हो जाते हैं ॥१७॥

करहिं विबुध जे आतम ध्यान, तुम प्रभाव ते होय निदान।
जैसे नीर सुधा अनुमान। पीवत विषविकार की हान॥

१७ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो कुट्ठबुद्धिणासमाण चारणाण[१]।

१—चारण ऋद्धिधारी जिनों को नमस्कार हो।

मन्त्र—ॐ य. य. स स. ह. ह्. वः व. उहरिहलय ह्ह (हु?) हहान्त ॐ ह्रीं पार्श्वनाथ दह दह दुष्टनागविषं क्षिप ॐ स्वाहा।

(श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रे गा० १६ म० चि० पृ० ७१)

विधि—इस मन्त्र से ७ बार जल मन्त्रित कर जिस जगह सर्प काटा हो उस जगह छिड़कने से तथा उसी मन्त्रित जल को पिलाने से सर्प का विष नाश होता है। अन्य विषैले जन्तुओं के विष का असर भी दूर होता है।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपध्येयाय श्रीजिनाय नम.।

Efficacy of meditation is extra-ordinary

Oh Lord of the Jinas! this soul, when meditated upon by the talented as non-distinct from Thee attains to Thy prowess in this world Does not even water when looked upon as nectar verily destroy the effect of poison? (17)

सर्पविष विनाशक

त्वामेव वीततमस परवादिनोऽपि,
नून विभो! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलिभिरीश! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण? ॥१८॥

हे मिथ्या-तम-अज्ञान रहित, सुज्ञानमूर्ति? हे परम यती।
हरिहरादि ही मान [१]अर्चना, करते तेरी मन्दमती॥

१—पूजा या उपासना।

Oh omnipotent Being ? even the followers of the other (non Jaina) schools philosophy certainly resort to Thee alone, mistaking Thee for Hari, Hara and others—Thee from whom ignorance has departed For, Oh God ! is not even a white conch mistaken for one having various colours by those who suffer from Kacha-kamali (eyediseases like colour-blindness) ? (13)

नेत्ररोग विनाशक

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा-
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोक. ।
अभ्युद्गते दिनपतौ स महीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोक ॥१९॥

धर्म - देशना के सु-काल मे, जो समीपता पा जाता ।
मानव की क्या बात कहू तरु, तक अ-शोक है हो जाता ॥
जीववृन्द नहिं केवल जागत, रवि के प्रकटित ही होते ।
तरु तक सजग होत अति हर्षित, निद्रा तज आलस खोते ॥

श्लोकार्थ—हे पुण्यगुणोत्कीर्ते ! धर्मोपदेश के समय आपकी समीपता के प्रभाव से मनुष्य की तो बात क्या वृक्ष भी अशोक (शोकरहित) हो जाता है। अथवा ठीक ही है

१—उपदेश । २—वृक्ष ।

कि सूय का उदय होने पर केवल मनुष्य ही विवोध (जागरण) को प्राप्त नही होते किन्तु कमल, पँवार, तोरई आदि वनस्पति भी अपने सकोचरूप निद्रा को छोड़कर विकसित हो जाती है।

(यह अशोकवृक्ष प्रातिहार्य का वर्णन है)

निकट रहत उपदेश सुनि तरुवर भये अशोक ॥
ज्यो रवि ऊँगत जीव सव, प्रगट होत भुविलोक ॥

१९ऋद्धि— ॐह्रीअर्हं णमो अग्गिसगदणासयाण आगासगामीण[१]।

मत्र—णहूसव्वमएलोमोन, णयाज्झावउमोन, णमारीय-आमोन, णद्वासिमोन, णताहरिअमोन, हुलुहुलु, कुलुकुलु, चलुचुलु स्वाहा।

विधि—इस प्रभावशाली महामन्त्र को श्रद्धापूर्वक जपने से मत्स्यादिको की हत्या करने वालो के वन्धन (जाल) मे फँसी हुई मछलियां तथा जलचर जीव मुक्त हो जाते हैं।

ॐ ह्री अशोकप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नम ।

Jina's vicinity averts Sorrow

Leave aside the case of a human being, (for) even a tree becomes free from sorrow (Asoka) on account of its being in Thy proximity at the time Thou preachest religion Aye, does not the world of living beings including even trees awake at the rise of the sun ? (19)

१—आकाशगामी जिनो को नमस्कार हो।

उच्चाटनकारक

चित्रं विभो ! कथमवाङ् मुखवृन्तमेव,
विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टि ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !,
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि॥२०॥

है विचित्रता सुर बरसाते, सभी ओर से सघन-सुमन ।
नीचे डठल ऊपर पंखुरी, क्यो होते है हे भगवन ॥
है निश्चित, सुजनो सुमनो के, नीचे को होते बन्धन ।
तेरी समीपता की महिमा है, हे वामा—देवी नन्दन ॥

श्लोकार्थ—हे धर्मसाम्राज्यनायक ! देवो के द्वारा आपके ऊपर जो सघन पुष्पो की वृष्टि की जाती है, उनके डठल नीचे की ओर और पाखुरी ऊपर की ओर रहती है, मानो वे डठल इसी बात को सूचित करते है कि आप की निकटता से भव्य-जनो के कर्मबन्धन नीचे को हो जाते है अर्थात् नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥

(पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य का वर्णन है)

सुमनवृष्टि जो सुर करहिं, हेठ बीट मुख सोहि ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बन्ध अधोमुख होहि ॥

२०ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो गहिलगहणासयाण आसीविसाण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं नमो भगवओ, ॐ (?) पासनाहस्स थभय सव्वाओ ईं ईं, ॐ जिणाणाए मा इह, अहि हवतु, ॐ क्षां क्षीं ह्रीं क्षूं क्षौं क्ष स्वाहा ।

२ - व्यवधानरहित घने अथवा धाराप्रवाहरूप से । २—नीचे
३ — आशीविष ऋद्धिधारी (जिनो को नमस्कार हो ।

विधि—इन प्रभावक मत्र से सफेद फूल को १०८ बार मत्रित कर उसे राज्यप्रमुख को सुंघाने से वह साधनेवाले के वश मे होता है और अपराध क्षमा कर देता है।

ॐ ह्री पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नम ।

Jina s presence is miraculous

Oh pervader of the universe ! it is a matter of surprise that uninterrupted shower of celestial blossoms falls all around with their stalks turned down-wards or why, (it is natural that) in Thy presence, oh master of saints ? fetters (stalks) of the good-minded (flowers) (ought to) certainly fall down (20)

शुष्कवनोपवनविकाशक

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवाया:
पीयूषतां तव गिर. समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यत परमसम्मदसङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ।।२१।।

अति गम्भीर हृदय-सागर से, उपजन प्रभु के दिव्यवचन ।
अम्मृततुल्य मान कर मानव, करते उनका अभिनन्दन ।।
पी-पीकर जग-जीव [१]वस्तुत , पा लेते आनन्द अपार ।
अजर अमर हो फिर वे जगको, हर लेते पीड़ा का भार ।।

१—निश्चयपूर्वक ।

श्लोकार्थ—हे त्रिभुवनपते ! आपके अति उदार अगाध हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न हुई दिव्य-वाणी (दिव्यध्वनि) को समारी जीव सुधासमान बतलाते है, सो यह बात सोलह आना सच है क्योंकि धर्मानुरागी भव्यजन आपकी उस अमृततुल्यवाणी का पान करके निराकुल अक्षय अनन्तसुख को प्राप्त करते हुए अजर अमर पद को प्राप्त करते है ॥२१॥

(यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है)

उपजी तुम हिय उदधितें वानी सुधा—समान ।
जिहि पीवत भविजन लहहि अजर अमर पद थान ॥

२१ ऋद्धि—ॐ ह्री ह्रां अर्हं णमो पुच्छियसकलणायगाण दिट्ठिविसाण ।

मंत्र— ॐ अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसव्वसाहू (ण ?) सव्वधम्मतित्थयराण, ॐ नमो भगवईए सुअदेवयाए शान्तिदेवयाए सव्वपवयणदेवयाण दसण्हं दिसापालाण चउण्हं लोगपालाण, ॐ ह्री अरिहंतदेवाण नमः ।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र को १०८ वार जपने से सब कार्यों की सिद्धि होती है, जय-जय होती है और हिंसक जानवर सर्प चौरादिकों का भय दूर होता है ।

ॐ ह्री अजरामरदिव्यध्वनिप्रातिहार्योप-शोभिताय (श्री ?) जिनाय नमः ।

Jina's sermon leads to immortality

It is proper that Thy speech which springs up from the ocean of Thy grave

१—दृष्टि विषऋद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो ।

heart is spoken of as *ambrosia* for, by drinking it, the Bhavyas who (hence) participate in the supreme joy, quickly attain the status of permanent youth and immortality (21)

मधुरफलप्रदायक

स्वामिन् सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचय सुरचामरौघा ।
ये ऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतय खलु शुद्धभावाः ॥२२॥

ढुरते चारु-चँवर [1]अमरो मे, नीचे से ऊपर जाते ।
भव्यजनों को विविधरूप से, विनय सफल वे दर्शाते ॥
शुद्धभाव से [2]नतशिर हो जो, तव [3]पदाब्ज मे झुक जाते ।
परमशुद्ध हो ऊर्ध्वगती को, निश्चय करि भविजन पाते ॥

श्लोकार्थ—हे समवसरणलक्ष्मीसुशोभितदेव ! जब देवगण आपके ऊपर चँवर ढोरते हैं तब वे पहिले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद मे ऊपर की ओर जाते हैं मानो वे जनता को यह ही सूचित करते हैं कि जिनेन्द्रदेव को झुक झुक कर नमस्कार करने वाले व्यक्ति हमारे समान ही ऊपर को जाते हैं अर्थात् स्वर्ग या मोक्ष पाते हैं ॥२२॥

(यह चँवर प्रातिहार्य का वर्णन है)

कहहिं सार तिहुँलोक को, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमे, तसु गति ऊरध होय ॥

१—देवो द्वारा २—मस्तक झुका कर ३—चरणकमल

२३ 'ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो तरु-पत्तणासयाण [1]उग्ग-तवाण ।

मंत्र—ओ हृत्युमले विणुमुहुमल (ले ?) ॐ मलिय ॐ सतुहुमाणु सीसघुणता जेगया,आयासपायालगतॐअलिजरेस सर्व्वजरे स्वाहा ।

विधि—इस मंत्र को ७ बार जपते हुए मुख के सामने अपनी दोनो हथेलियों को मसल कर अच्छे आदमी के पास मिलवे को जाने से लाभ होता है तथा राजा की ओर से सम्मान मिलता है ।

ओ ह्रीं चामरप्रातिहार्योपशोभिताय श्रीजिनाय नमः ।

The poet describes the fourth Pratiharya

Oh Lord ! I think, the clusters of the sacred (or bright) celestial chowries (Chamaras) which first bend very low and then rise up proclaim that those pure-hearted persons who bow to (Thee) this master of the sages are sure to the highest grde (22)

राज्यसन्मानदायक

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै–
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

१—उग्रतप वाले जिनों को नमस्कार हो ।

उज्ज्वल हेम सुरत्न-[1]पीठ पर श्याम सुतन शोभित [2]अनुरूप।
अतिगम्भीर सुनिःसृत वाणी, बतलाती है सत्य स्वरूप ॥
ज्यों सुमेरु पर ऊँचे स्वर से गरज गरज घन बरसें घोर।
उसे देखने सुनने को जन, उत्सुक होते जैसे मोर ॥

श्लोकार्थ—हे भगवन् ! स्वर्णनिर्मित और रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान और दिव्यध्वनि को प्रकट करता हुआ आपका सांवला शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे स्वर्णमय सुमेरुपर्वत पर वर्षाकालीन नवीन काले मेघ गर्जना कर रहे हों। उन मेघों को जैसे मयूर बड़ी उत्सुकता से देखते हैं उसी प्रकार भव्य जीव आपको भी बड़ी उत्सुकता से देखते हैं ॥२३॥

(यह सिंहासन प्रातिहार्य का वर्णन है)

सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर।
श्याम सुतन घनरूप लखि, नाचत भविजन-मोर ॥

२३ ऋद्धि ॐ ह्रीं अर्हं णमो वज्जस्स (वयरा) हरणाण [5]डिन्नवाणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवति ! चण्डि ! कात्यायनि ! सुभग-दुर्भगयुवतिजनाना (मा_ आकर्षय आकर्षय ह्रीं र र य्लूँ संवौषट् [6]देवदत्ताया हृदय घे घे।

विधि—इस मंत्र को ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से इच्छित स्त्री का आकर्षण होता है।

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्योपशोभिताय श्री जिनाय नमः।

The poet describes the fifth Pratiharya

The Bhavyas here ardently look at Thee who art dark (in complexion), whose speech is grave and who art seated on a glittering golden lion-throne studded with jewels, as is the case with the peacocks who eagerly look at the mightily thundering, dark and fresh cloud which has arisen to the summit of the golden mountain (Meru) (23)

शत्रुविजितराज्यप्रदायक

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागता व्रजति को न सचेतनोऽपि ? ॥२४॥

तुव तन भा[1]-मण्डल से होते, सुरतरु के पल्लव[2] छवि-छीन।
प्रभुप्रभाव को प्रकट दिखाते, हो जडरूप चेतना-हीन ॥
जब जिनवर की समीपता तें, सुरतरु हो जाता गत[3]-राग
तब न मनुज क्यो होवेगा जप, वीतराग खो करके राग ? ॥

भावार्थ—हे वीतरागदेव ! जबकि आपके दैदीप्यमान भामण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तो की लालिमा भी लुप्त हो जाती है, अर्थात् आपकी समीपता से जब वृक्षो का

१—गोलाकार कान्तिपुञ्ज । २—पत्र । ३—लालिमारहित ।

राग (लालिमा) भी जाता रहता है तब ऐसा कौन सचेतन पुरुष है जो आपके ध्यान द्वारा या आपकी समीपता से वीतरागता को प्राप्त न होगा ? ॥२४॥

(यह भामण्डल प्रातिहार्य का वर्णन है)
छवि हत होहिं अशोकदल, तुव भामण्डल देख।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विसेख॥

२४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो रज्जदावयाण [1]तत्ततवाण।

मंत्र—ॐ ह्रीं भैरवरूपधारिणि ! चण्डशूलिनि ! प्रतिपक्षसैन्य चूर्णय चूर्णय, घूर्म्मय घूर्म्मय, भेदय भेदय, ग्रस ग्रस, पच पच, खादय खादय, मारय मारय हुँ फट् स्वाहा।

(—श्री भैरव प० क० अ० ५ श्लो० १७)

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मंत्र को १०८ बार जप कर चारों ओर लकीर फेरने से दुश्मन की सेना मैदान छोड कर भाग जाती है। साधक को जय होती है और हिम्मत बढती है।

ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यप्रभास्वते (श्री) जिनाय नमः।

Even God's presence destroys passions

The colour of leaves of Asoka tree is obscured by the dark halo of the orb of Thy light (Bhamandala) which is spreading above Or why, oh passionless one ! which animate being is not set free from attachment (and aversion) by the influence of Thy mere presence ? (24)

१—तप्ततप वाले जिनों को नमस्कार हो।

असाध्यरोग शामक

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन—
मागत्य निर्वृतिपुरी प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभ सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

नभ-मडल मे गूँज गूँज कर, सुरदुन्दुभि[1] कर रही निनाद[2] ।
रे रे प्राणी आतम हित नित, भज ले प्रभु को तज परमाद ॥
मुक्ति धाम पहुचाने मे जो, सार्थवाह[3] वन तेरा साथ ।
देंगे त्रिभुवनपति परमेश्वर, विघ्नविनाशक पारसनाथ ॥

भावार्थ—हे मुक्तिसार्थकवाहक ! आकाश मे जो देवो के द्वारा नगाडा बज रहा है वह मानो चिल्ता-चिल्लाकर तीनो लोको के जीवो को सचेत ही कर रहा है कि जो मोक्षनगरी की यात्रा को जाना चाहते हैं वे प्रमाद छोडकर भगवान पार्श्वनाथ की सेवा करें ॥ २५ ॥

(यह दुन्दुभिप्रातिहार्य का वर्णन है)

सीख कहै तिहुं लोक को, यह सुर-दुन्दुभि-नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥

२४ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो हिडलमलणाण महातवाण[4] ।

१—दुन्दुभि नाम का देवताओं का बाजा । २—शब्द । ३—सारथि सहायक या अग्रसर । ४—महातपधारी जिनों को नमस्कार हो ।

मत्र—ॐ नमो भगवति ! वद्धगरुडाय सर्वविषविनाशिनि ! छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द, गृण्ह गृण्ह, एहि एहि भगवति ! विद्ये हर हर हुँ फट् स्वाहा ।

—(श्री भैरवपद्मावतीकल्प अ० १० श्लो० १६)

विधि—इस मत्र का शुद्ध पाठ करते हुए जहर चढे आदमी के नजदीक जोर जोर से ढोल बजाने से जहर उतर जाता है ।

ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्याय श्रीजिनाय नम ।

The seventh Prathharya viz, the celestial drum like the previous objects is suggestive

Oh God ! I believe that the celestial drum which is resounding in the sky announces to the three worlds—Haloo, Haloo, shake off idleness, approach (this god) and resort to him the leader of the caravan leading to (proceeding towards) the city of the final emancipation (25)

वचनसिद्धिप्रतिष्ठापक

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !,
तारान्वितो विधुरय विहताधिकार १।

१—विहिताधिकार इत्यपिपाठ ।

मुक्ताकलापकलितो[1] ल्लसितातपत्र—
व्याजात्त्रिधा धृततनु र्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥

अखिल-विश्व मे हे प्रभु ! तुमने, फैलाया है विमल-प्रकाश ।
अत छोड कर स्वाधिकार को, ज्योतिर्गण आया तव पास ॥
मणि-मुक्ताओ की झालर युत आतपत्र[2] का मिष लेकर ।
त्रिविध-रूप धर प्रभु को सेवें,निशिपति तारान्वित [3]होकर ॥

श्लोकार्थ—हे अपूर्वतेजपुञ्ज ! आपने तीनो लोको को प्रकाशित कर दिया, अब चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे ? इसीलिए वह तीन छत्र का वेप धारण कर अपना अधिकार वापिस लेने की इच्छा से आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ है । छत्रो मे जो मोती लगे है वे मानो चन्द्रमा के परिवार स्वरूप तारागण ही है ॥ २६ ॥

(यह छत्रत्रय प्रातिहार्य का वर्णन है)

तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागन छवि देत ।
त्रिविधरूप धरि मनहुँ ससि, सेवत नखतसमेत ॥

२६ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो जयपदाईण [4]घोरतवाण ।

मत्र—ॐ ह्री श्री प्रत्यङ्गिरे महाविद्ये येन-येन कैनचित् मम पाप कृत कारितम् अनुमत वा तत् पाप तमेव गच्छतु ॐ ह्री श्रीं प्रत्यङ्गिरे महाविद्ये स्वाहा ।

विधि—प्रात काल एकान्त स्थान मे पूर्वदिशा की ओर मुख करके तथा सन्ध्या समय पश्चिम की ओर मुख करके

1—कलितोच्छ्वसितात इत्यपि पाठ । 2—छत्र । 3—नक्षत्रो सहित । 4—घोरतपधारी जिनो को नमस्कार हो ।

दोनो हाथ जोडकर अञ्जलिमुद्रा से १०८ वार मत्र का जाप करने से दूसरो की विद्या का छेद होता है।

ॐ ह्री छत्रत्रयप्रातिहार्यविराजिताय श्रीजिनाय नम ।

The poet delineates the eighth or the final Pratiharya

Oh Lord ! as the worlds have peen (already) illuminated by Thee, this moon accompanied by stars, (being thus) deprived of her authority has certainly approached Thee by assuming the three bodies in the disguise of the (three) canopies which are shining on account of their being adorned by a cluster of pearls (26)

वैरविरोधविनाशक

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्य–हेम–रजतप्रविनिर्मितेन,
[1]सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

हेम-[2]रजत-माणिक मे निर्मित, कोट तीन अति शोभित से।
तीन लोक एकत्रित होके, किये प्रभू को वेष्ठित मे ॥
अथवा कान्ति-प्रताप-सुयश के, सचित हुये [3]सुकृत से ढेर।
मानो चारो दिशि से आके, लिया इन्होने प्रभु को घेर ॥

१—शाल० इत्यपि पाठ । २—चांदी । ३—पुण्य ।

श्लोकार्थ—हे प्रतापपुञ्ज ! समवसरण भूमि में आपके चारों ओर माणिक्य, स्वर्ण और चाँदी के बने तीन कोट हैं, वे मानो आपकी कान्ति, प्रताप और कीर्ति के वर्तुलाकार समूह ही हैं ॥ २७ ॥

प्रभु तुम शरीर दुति रजत जेम, परताप पुंज जिमि शुद्ध हेम ।
अतिधवल सुजश [1]रूपा समान, तिनके गढ तीन विराजमान ॥

२७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खलदुट्ठणासयाण [2]घोरपरक्कमाण ।

मंत्र—ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं, ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं नमो आइरियाणं, ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ ह्रीं नमो णाणाय, ॐ ह्रीं नमो दंसणाय, ॐ ह्रीं नमो चारित्ताय, ॐ ह्रीं नमो तवाय, ॐ ह्रीं नमो त्रैलोक्यवशंकराय ह्रीं स्वाहा ।

विधि—इस महामंत्र का श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हुए जल-मंत्रित कर रोगी को पिलाने तथा उस पर छींटा देने से उसकी पीडा एवं दृष्टि-दोष (नजर) दूर होती है ।

ॐ ह्रीं वप्रत्रयविराजिताय श्रीजिनाय नमः ।

The poet depicts the triad of ramparts

Oh (all) knowing being ! Thou shinest in all directions on account of the triad of the ramparts beautifully made of rubies, gold and silver–the triad which is as it were the store of Thy lustre, prowess and glory, that fill up the three worlds and are amassed together (27)

यश कीर्तिप्रसारक

दिव्यस्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपाना—
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिवन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र[1],
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

झुके हुये इन्द्रो के मुकुटो, को तजि कर सुमनो[2] के हार।
रह जाते जिन चरणो मे ही, मानो समझ श्रेष्ठ आधार ॥
प्रभु का छोड समागम सुन्दर, सु-मनस[3] कही न जाते हैं।
तव प्रभाव से वे त्रिभुवनपति !, भव-समुद्र तिर जाते हैं ॥

श्लोकार्थ—हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार करते समय इन्द्रो के मुकुटो मे लगी हुई दिव्य पुष्पमालाये आपके श्रीचरणो मे गिर जाती हैं मानो वे पुष्पमालायें आपसे इतना प्रेम करती है कि उसके पीछे इन्द्रो के रत्ननिर्मित मुकुटो को भी वे छोड देती है। अर्थात् आपके लिये बडे बडे इन्द्र भी नमस्कार करते हैं।

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल, तिन सीस मुकुट तज देहिं माल।
तुव चरन लगत लहलहै प्रीति, नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥

२८ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्ह णमो उवदववज्जणाण घोर-गुणाण[4]।

१—वाऽपरत्र इत्यपि सभवति। २—फूलो। ३—विद्वान। ४—घोरगुण वाले जिनो को नमस्कार हो।

मत्र—ॐ ह्री अरिहन्त सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू चुलु चुलु हुलु हुलु कुलु कुलु मुलु मुलु इच्छिय मे कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—इस प्रभावक मत्र का श्रद्धापूर्वक एक लाख वार जप पूरा करने से तीनो लोको मे जय प्राप्त होती है, प्रताप बढता है, पराधीनता नाश होती है तथा मनोरथ पूर्ण होते है ।

ॐ ह्री पुष्पमालानिषेवितचरणाम्बुजाय अर्हते नम ।

The poet praises God by resorting to a rhetorical inconsistency

Oh Jina ! celestial garlands of the bowing lords of heavens leave aside their diadems, (even) though (they are) studded with jewels and resort to Thy feet Or indeed the good-minded (flowers) do not find pleasure any where else when there is Thy company (28)

आकर्षणकारक

त्व नाथ ! जन्मजलधे विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयत्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्[1] ।
युक्त हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्र विभो ! यदसि कर्मविपाकशून्य ॥२९

[1]—पृष्ठिलग्नान् इत्यपि पाठ ।

Even one who indirectly follows Jina i e directly follows Jainism gets liberated

Oh Lord ! though Thou hast turned away Thy face from the ocean of births (and deaths), yet Thou enablest the living beings clinging to Thy back to cross it Nevertheless, this is justifiable in the case of Thine that art the good governor of the world (Parthiva-nipa) This is also seen in the case of an earthen pot (Parthiva-nipa) But, this is strange that Thou art not subject to the effects of Karmans (Karma-vipaka-sunya) whereas that earthen pot is not so (There is another interpretation possible, viz , it is strange that Thou enablest the beings to cross Samsara even when Thou art Karma-vipaka-sunya, but such is not the case with an earthen pot which is not annealed (29)

असभवकार्यसाधक

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्व,

कि वाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ! ।

अज्ञानवत्यपि　सदैव　कथञ्चिदेव,
　　ज्ञान त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु[1]॥३०॥

जगनायक जगपालक होकर, तुम कहलाते दुर्गत[2] क्यो ?।
यद्यपि अक्षर[3] मय स्वभाव है तो फिर अलिखित[4] अक्षत क्यो ?॥
ज्ञान झलकता सदा आप मे, फिर क्यो कहलाते अनजान[5]।
स्व-पर प्रकाशक अज्ञ जनो को, हे प्रभु ! तुम ही सूर्य समान ॥

श्लोकार्थ—हे जगपालक ! आप तीन लोक के स्वामी होकर भी निर्धन है। अक्षरस्वभाव होकर भी लेखनक्रियारहित है, इसी प्रकार से अज्ञानी होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती पदार्थो के जानने वाले ज्ञान से विभूषित है।

जिस अलकार मे शब्द से विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुत विरोध नही होता उसे विरोधाभास अलकार कहते हैं। इस श्लोक मे इसी अलकार का आश्रय लेकर वर्णन किया गया है। उपर्युक्त अर्थ मे दिखने वाले विरोध का परिहार इस प्रकार है—

हे भगवन् ! आप त्रिलोकीनाथ है और कठिनाई से जाने जा सकते है। अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी आकार रहित (निराकार) है। अज्ञानी मनुष्यो की रक्षा करने वाले है। आप मे सदा केवलज्ञान प्रकाशित रहता है।

तुम महाराज निर्धन निरास तज विभव विभव सब जग विकास।
अक्षर स्वभाव सै लखै न कोय, महिमा अनन्त भगवन्त सोय॥

१—काशहेतु इत्यपि पाठ। २—दरिद्र, अत्यन्त कठिनाई से जानने योग्य। ३—अक्षरस्वभाव होकर भी मोक्षस्वरूप। ४—लिपि से लिखे नहीं जा सकते, कर्मलेपरहित। ५—अज्ञानी होकर भी छद्मस्थ अज्ञानियो को सबोधन करने वाले।

३० ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो अपुव्वबलपदाईण आमोसहिपत्ताण ।

मत्र—ॐ ह्री अर्हं नमो जिणाण लोगुत्तमाण, लोगना-हाण, लोगहियाण, लोगपईवाण, लोगपज्जोअगराण, मम शुभा-शुभ दर्शय दर्शय ॐ ह्री कर्णपिशाचिनी मुण्डे स्वाहा ।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मत्र को शयन करते वक्त १०८ वार जपने से स्वप्न मे किये हुए कार्य का सभावित शुभाशुभ फल मालूम पडता है।

ॐ ह्री अद्भुतगुणविराजितरूपाय श्रीजिनाय नम ।

Oh Saviour of mankind (Janapalaka)! though Thou art the master of the universe, yet Thou art poor (Durgata) Oh God! although Thy very nature is a letter (Akshara), *yet Thou art not forming an alphabet (Thou* art Alipi) Moreover, how is it that knowledge the acause of the illumination of the universe permanently shines in Thee, even when Thou art ignorant (Ajnanavoti)?

These apparent contradictions can by removed be rendering the verse as follows —

१—आमर्ष-औषधि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो ।

On Saviour of mankind ! as Thou art the master of the universe, Thou art realized with great difficulty (Durgata) Or, Oh Saviour of mankind (Janapa) ! though Thou art the master of the universe, Thou art bald headed (Alal adurgata) Or Though are the protector from the mundane existence (Durga) as Thy very nature is imperishable (Akshara), Thou art not enshrouded with Karmans (Alipi) And there is no wonder if knowledge, the cause of the illumination of the universe, always shines in Thee, even when Thou redeemest the ignorant (Ajnan avati) (30)

शुभाशुभ प्रश्न दर्शक

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा—
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

पूरव वैर विचार क्रोध करि, कमठ धूलि बहु बरसाई ।
कर न सका प्रभु तव तन मैला, हुआ मलिन खुद दुखदाई ॥
कर करके उपसर्ग घनेरे, थकि कर फिर वह हार गया ।
कर्मबन्ध कर दुष्ट प्रपंची, मुँह की खाकर भाग गया ॥

श्लोकार्थ—हे जितशत्रो ! आपके पूर्वभव के वैरी 'कमठ' ने आप पर भारी धूल उडा कर उपसर्ग किया परन्तु वह धूलि आपके शरीर की छाया भी नष्ट नहीं कर सकी, प्रत्युत तिरस्कार की दृष्टि से किया गया उसका यह कार्य तो दूर रहे किन्तु विफल मनोरथ हताश वह दुष्ट कमठ का जीव ही रज-कणो (पापकर्मों) मे कस कर जकडा गया ॥ ३१ ॥

कोप्यौ सु कमठ निज वैर देख, तिन करी धूल वर्षा विसेख ।
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापि लम्पट मलीन ॥

३१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इट्ठविण्णत्तिदावयाण खेलोसहिपत्ताण[1] ।

मंत्र—ॐ ह्रीं पार्श्वयक्षदिव्यरूपाय महा (घ ?) वर्ण एहि एहि ग्राँ क्रों ह्रीं नम ।

—(भं० प० क० ग्र० ३ श्लो० ३९)

विधि—इस मंत्र को श्रद्धापूर्वक जपने से दुष्ट दुश्मनो का पराजय होता है तथा उपद्रव शान्त होते हैं ।

ॐ ह्रीं रजोवृष्टचक्षोभ्याय श्रीजिनाय नम ।

Those who try to harass God are caught in their own trap.

Masses of dust which entirely filled up the sky and which were thrown up in rage by malevolent Kamatha failed to mar, oh Lord, even Thy loveliness On the contrary, that very wretch whose hopes were shattered, was caught in this trap (of masses of dust) (31)

१—खेलौषधि ऋद्धि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो ।

विधि—इस मंत्र को जपते हुए जमीन पर न गिरे हुए सरसो के दाने मंत्रित कर घर की चौखट पर डालने मे उस घर के लोग गहरी निद्रा मे निमग्न हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं कमठदैत्यमुक्तवारिधाराक्षोभ्याय श्रीजिनाय नम.।

Oh Jina ! that very shower which was let loose (upon Thee) by the demon (Kamatha)—the shower which was unfordable and excessively horrible and which was accompanied by a range of thundering mighty clouds, flashes of lightnings horribly emanating (from the sky) and terrible drops of water thick like a club served in his own (Kamatha's) case the purpose of a bad sword (32)

उल्कापातातिवृष्टयनावृष्टिनिरोधक

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति-मर्त्यमुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्नि ।
प्रेतव्रज ' प्रति भवन्तमपोरितो 'य
सोऽस्याभवत्प्रतिभव भवदु खहेतु. ॥३३॥

कालरूप विकराल [1]वक्ष विच, मृतमुडन की धरि माला।
अधिक भयावह जिनके मुख से, निकल रही अग्नीज्वाला ॥

१—छाती।

अगणित प्रेत पिशाच असुर ने, तुम पर स्वामिन भेज दिये।
भव भव के दुखहेतु क्रूर ने, कर्म अनेकों बाध लिये ॥

श्लोकार्थ—हे उपसर्गविजयिन् ! कमठ के जीव ने आपको कठोर तपस्या से चलायमान करने की खोटी नियत से जो विकराल पिशाचो का समूह आप की तरफ उपद्रव करने के लिये दौडाया था, उमसे आपका कुछ भी बिगाड नहीं हुआ परन्तु उस क्रूर कमठ के ही अनेक खोटे कर्मों का बन्ध हुआ, जिससे उसे भव भव मे असह्य यातनाएं झेलनी पडी ॥३३॥

वस्तुछन्द—मेघमाली आप बल फोरि।
भेजे तुरत पिशाचगन, नाथ पास उपसर्ग करन।
अग्निजाल झलकत मुख धुनि करत जिमि[1]मत्तवारण॥
कालरूप विकराल तन, मुण्डमाल तिह कठ।
ह्वै निसक वह रक्त निज, करे कर्मदृढ गठ॥

३३ ऋद्धि ॐ ह्री अर्हं णमो असणिपातादिवारयाण [2]सव्वोसहिपत्ताण।

मत्र - ॐ ह्री श्री क्ली म्रा म्री म्रूं म्र क्ली क्ली कलिकुण्ड पासनाह ॐ चुरु चुरु मुरु मुरु फुरु फुरु फर फर (फार फार) किलि किलि कल कल धम धम ध्यानाग्निना भस्मीकुरु कुरु पुरय पुरय प्रणताना हित कुरु कुरु हु फट् स्वाहा।

विधि - इस मत्र का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से राज्य भय, भूतभय, पिशाचभय, डाकिनी शाकिनी हस्ती सिंह सर्प बिच्छू आदि का भय नष्ट होता है।

ॐ ह्री कमठदैत्यप्रेषितभूतपिशाचाद्यक्षोभ्याय श्रीजिनाय नम।

१—मदोन्मत्त हाथी। २—सर्वौषधिऋद्धिप्राप्त जिनों को नमस्कार हो।

Even that very troop of the ghosts that was sent against Thee by him (Kamatha)—the ghosts who were (round their-necks) garlands (reaching their chests) of skulls of human beings, with dishevelled and erect hair and distorted features, and who were belching fire from their dreadful mouths became the cause of mundane sufferings in every birth in his (Kamathas) case (33)

भूतपिशाचपीडा तथा शत्रुभय नाशक

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
मारावयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्या ।
भक्त्योल्ल-सत्पुलकपक्ष्मल-देह-देशा.,
पादद्वय तव विभो ! भुवि जन्मभाज. ॥३४॥

पुलकित वदन सु-मन हर्षित हो, जो जन तज मायाजजाल ।
त्रिभुवनपति के चरण-कमल की, सेवा करते तीनो काल ॥
तुव प्रसादते भविजन सारे, लग जाते भवसागर पार ।
मानवजीवन सफल बनाते, धन्य धन्य उनका अवतार ॥

श्लोकार्थ—हे त्रिलोकीनाथ ! जो प्राणी भक्ति से उत्पन्न रोमाञ्चों से पुलकित होकर सासारिक अन्य कार्यों को छोड-कर तीनो सन्ध्याओ मे विधिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते है ससार मे वे ही धन्य हैं ॥३४॥

जे तुव चरन कमल तिहुकाल, सेवहिं तजि मायाजंजाल।
भाव-भगति मन हरष अपार, धन्य धन्य जग तिन अवतार॥
३४ ऋद्धि- ॐ ह्रीं अर्हं णमो भूतवाहावहारयाण[1] विट्ठोसहिपत्ताणं।

मन्त्र —ॐ नमो अरिहंताण ॐ नमो भगवइ महाविज्जाए सत्तट्ठाए मोर हुलु हुलु चुलु चुलु मयूरवाहिनीए स्वाहा।

विधि—पौष कृष्णा १० (गुजराती मगसिर कृष्णा १० वी) के दिन निराहार रह कर इस मंत्र का श्रद्धापूर्वक १००८ बार जप करे। परदेशगमन, व्यापार तथा लेन-देन के समय उक्त मन्त्र का ७ बार स्मरण करने से लक्ष्मी और अनाज का लाभ होता है।

ॐ ह्रीं त्रिकालपूजनीयाय श्रीजिनाय नमः।

Those who devote their time in worshipping God are fortunate

Oh Lord of the universe! blessed are those persons alone who by leaving aside their other activities worship here the pair of Thy feet oh mighty one, thrice a day (dawn noon and sunset) according to the prescribed rules, with the different parts of their bodies covered up with bristling horripilation of devotion (34)

१—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनों को नमस्कार हो।

मृगी उन्माद अपस्मार विनाशक

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविध समेति ? ॥ ३५

इस असीम भव-सागर मे नित, भ्रमत अकथ दुख पायो ।
तोऊ सु-यश तुम्हारो साचो नहि कानो सुन पायो ॥
प्रभु का नाम-मन्त्र यदि सुनता, चित्त लगा करके भरपूर ।
तो यह विपदारूपी नागिन, पास न आती रहती दूर ॥

श्लोकार्थ – हे सङ्कटमोचन ! इस अपार संसार-सागर मे मैंने आपका नाम नही सुना अर्थात् आपकी उत्तम कीर्ति मेरे कानो द्वारा नही सुनी गई, क्योकि निश्चय से यदि आपका नामरूपी पवित्र मन्त्र मैंने सुना होता तो क्या विपत्तिरूपी नागिन मेरे समीप आती ? अर्थात् कभी न आती ॥ ३५ ।

भवसागर मुह फिरत अजान, मैं तुव सुजस सुन्यौ नहि कान ।
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै, तासौं विपति भुजगम डरै ॥

३५ ऋद्धि[1] – ॐ ह्रीं अर्हं णमो मिणोरोग्रवारयाणं मणबलीण ।

मंत्र – ॐ नमो अरिहंताणं झ्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो सिद्धाणं भ्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो आयरियाणं स्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो उवज्झायाणं ह्म्ल्व्र्यूं नमः, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं छ्म्ल्व्र्यूं नमः, देवदत्तस्य (अमुकस्य) संकटमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि – सुन्दर चौकी पर इस मंत्र को लिख कर श्री

१ – मनोबलधारी जिनो को नमस्कार हो ।

पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा को पवरावे, पश्चात् चमेली के फूलो को चौकी पर चढाते हुए ५०० वार मन्त्र का जाप करे। यह जप खडे रह कर करना चाहिये। इससे सर्व सकटो का नाश होता है और सर्वत्र जय जयकार होता है।

ओ ह्री आपन्निवारकाय श्रीजिनाय नम ।

The poet commences self-examination and resorts to repentance

Oh Lord of the saints ! I do not believe that Thou hast (Thy name has) ever come within the range of my ears, in this endless ocean of existence, otherwise, can the venemons reptile of disasters approach (me), after the pure incantation (in the form) of Thy appellation has been listened to (by me) ? (35)

सर्पवशीकरण

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुग न देव !
मन्ये मया महित-मोहित-दान-दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवाना,
जातो निकेतनमह मथिताशयानाम् ॥३६॥

पूरब भव मे तव चरनन की, मनवाछित फल की दातार।
की न कभी सेवा भावो से, मुझ को हुआ आज निरधार॥
अत रक जन मेरा करते, हास्यसहित अपमान अपार।
सेवक अपना मुझे बनालो, अब तो हे प्रभ जगदाधार॥

श्लोकार्थ—हे वरद ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले के अनेक जन्मो में मैंने मनोवाछित फलो के देने में पूर्ण समर्थ आपके पवित्र चरणो की पूजा नही की, इसीसे इस जन्म मे मैं मर्मभेदी तिरस्कारों का आगार (घर) बना हुआ हूँ ॥३६॥

मनवाछित फल जिनपद माहि, मैं पूरव भव पूजे नाहि।
मायामगन फिर्‌यो अग्यान, करहिं रकजन मुझ अपमान॥

३६ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हणमो वाल्वसीयरणकुसलाण [1]वचणबलीण

मन्त्र—ॐ नमो भगवते चन्द्रप्रभाय चन्द्रेन्द्रमहिताय नयनमनोहराय ॐ चुलु चुलु गुलु गुलु नीलभ्रमरि नीलभ्रमरि मनोहरि सर्वजनवश्य कुरु कुरु स्वाहा।

(—श्री भै० प० क० अ० ६ श्लोक १८)

विधि—दीपमालिका के दिन पीली गाय के शुद्ध घृत का दीपक जलाकर नये मिट्टी के वर्तन मे काजल बनावे। पश्चात् कार्य पड़ने पर काजल आंख मे लगाने से सब आदमी वश मे होते हैं।

ॐ ह्री सर्वपराभवहरणाय श्रीजिनाय नमः।

A worshipper of God can never suffer from humiliations and disappointments

Oh God ! I believe that Thy (pair of) feet capable of granting desired gifts has not been worshipped by me even in the previous births That is why I have (now)

१—वचनवली जिनो को नमस्कार हो।

become in this birth an object of humiliations and an abode of frustrated hopes (36)

नून न मोहतिमिरावृत-लोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ! ॥३७॥

दृढ निश्चय करि मोह-तिमिर से, मुदे मुदे से थे [1]लोचन ।
देख सका ना उनसे तुमको, एकवार हे दुखमोचन ॥
दर्शन कर लेता गर पहिले तो जिसकी गति प्रबल अरोक ।
मर्मच्छेदी महा अनर्थक, माना कभी न दुख के थोक ॥

श्लोकार्थ—हे कष्टनिवारकदेव ! मोहरूपी सघन अन्धकार से आच्छादित नेत्रसहित मैंने पूर्वजन्मो मे कभी एक वार भी निश्चयपूर्वक आपको अच्छी तरह नही देखा, ऐसा मुझे दृढ विश्वास है ! यदि मैंने कभी आपका दर्शन किया होता तो उत्कट ससारपरम्परा के वर्द्धक मर्मभेदी अनर्थ मुझे क्यो दुखी करते ? क्योकि आपके दर्शन करने वालो को कभी कोई भी अनर्थ दु ख नही पहुँचा सकता ॥३७॥

मोह तिमिर छायो दृग मोहि, जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ।
तो दुर्जन मुझ सगति गहैं, मरमछेद के कुवचन कहैं ॥

३७ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वराज-पयावसीयरण-कुसलाण [2]कायबलीण ।

१—नेत्र । २—कायबली जिनो को नमस्कार हो ।

मन्त्र – ॐ अमृते ! अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि ! अमृत श्रावय श्रावय स स क्ली क्ली (ह्लूं ह्लूं ?) ब्लूं ब्लूं (ह्लां ह्लां ?) द्रा द्री (ह्री ह्री ?) द्रावय द्रावय ह्री स्वाहा ।

(—श्री भ० प० क० अ० २ श्लोक ८)

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र से जल मन्त्रित कर आचमन करने से भूत, ग्रह तथा शाकिनी आदि के उपद्रवो का नाश होता है ।

ॐ ह्री सर्वम (सर्वा) नर्थमथनाय श्रीजिनाय नम ।

The sight of God averts adversities

It is certain, oh Omnipotent one ! that Thou hast not been formerly seen even once by me whose eyes are blinded by the darkness of infatuation For otherwise, how can these misfortunes which pierce the vital parts of the heart and which are quickly appearing in a continuous sucession, make me miserable ? (37)

असह्यकष्ट निवारक

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दु खपात्रं,
यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या.।। ३८

देखा भी हैं, पूजा भी है, नाम आपका श्रवण किया।
भक्तिभाव अरु श्रद्धापूर्वक, किन्तु न तेरा ध्यान किया॥
इसीलिये तो दुखो का मैं [1]गेह बना हू निश्चित ही।
फले न किरिया बिना भाव के, है लोकोक्ति सुप्रचलित ही॥

श्लोकार्थ—हे जनबान्धव! पहिले किन्ही जन्मो मे मैंने यदि आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह निश्चय है कि मैंने भक्तिभाव से आपको अपने हृदय मे कभी भी धारण नहीं किया, इसीलिये तो अब तक इस ससार मे मैं दुखों का पात्र ही बना रहा क्योकि भावरहित क्रियाएं फलदायक नही होती॥ ३८॥

सुन्यौ कान जस पूजे पाय, नैनन देख्यौ रूप अघाय।
भक्तिहेतु न भयो चित चाव, दुखदायक किरिया बिन भाव॥

३८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दुस्सहकट्ठणिवारयाण खीरसवीण[2]।

मन्त्र—ॐ ह्री श्री ऐं अर्हं क्ली ब्लैं श्रौ यूं नमिऊण पासनाह दुखारिविजय कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—इस चिन्तामणि मन्त्र का श्रद्धापूर्वक सवा लाख बार जप करने से चिन्तित कार्यों की तत्काल सिद्धि होती है।

ॐ ह्रीं सर्वदुखहराय श्रीजिनाय नम।

Prayers etc, void af sincerity are fruitless

Oh philanthrophist! though I have even heard, worshipped and seen Thee,

---

१—घर। २—क्षीरस्रावी ऋद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो।

yet I Have not reverentallw enshrined Thee in my heart Hence I have become an object of miseries, for, actions, (sech as hearing, worshippin and seeing The) performed without sincerity (Bhava) do not yield fruits, (38)

सर्वज्वरशामक

त्व नाथ ! दु खिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिना वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दया विधाय,
दुखाकुरोद्दलनतत्परता विधेहि ॥३९॥

दीन दुखी जीवो के रक्षक, हे करुणासागर प्रभुवर ।
शरणागत के हे प्रतिपालक, हे पुण्योत्पादक ! जिनवर ॥
हे जिनेश ! मैं भक्तिभाव वश, शिर धरता तुमरे पग पर ।
दु खमूल निर्मूल करो प्रभु, करुणा करके अब मुझ पर ॥

श्लोकार्थ—हे दयालुदेव ! आप दीनदयाल, शरणागत-प्रतिपाल, दयानिधान, इन्द्रियविजेता, योगीन्द्र और महेश्वर हैं अत सच्ची भक्ति से नम्रीभूत मुझ पर दया करके मेरे दुखाकुरो के नाश करने मे तत्परता कीजिये ॥ ३९ ॥

महाराज शरनागत पाल, पतित उधारन दीन दयाल ।
सुमरन करहु नाय निज शीस, मुझ दुख दूर करहु जगदीस ॥

३९ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वजरसतिकरणाण सप्पिसवीण[1] ।

---

१ - घृतस्रवी जिनो को नमस्कार हो ।

हे शरणागत के प्रतिपालक अशरण जन को एक शरण।
कर्मविजेता त्रिभुवन नेता, चारु चन्द्रसम विमल चरण ।।
तव पद-पङ्कज पा करके हे, प्रतिभाशाली बड़भागी।
कर न सका यदि ध्यान आपका, हूँ अवश्य तव हतभागी ।।

श्लोकार्थ - हे भुवनपावन ! आपके अशरणशरण, शरणागतप्रतिपालक, कर्मविजेता और प्रसिद्ध प्रभावशाली चरण-कमलों को प्राप्त करके भी यदि मैंने उनका ध्यान नहीं किया तो मुझ सरीखा अभागा कोई नहीं ।। ४० ।।

कर्मनिकदन महिमा सार, असरनसरन सुजस विस्तार।
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय, तो मुझ जनम अकारथ जाय ।।

४० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गसीयवाहाविणासयाण अघुसवीण[1]।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते भल्व्यूं नम स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र के जाप जपने से सब प्रकार के विषमज्वर दूर होते हैं।

ॐ ह्रीं सर्वशान्तिकराय श्रीजिनचरणाम्बुजाय नम ।

Even after having attained as a refuge Thy lotus feet, which are the resting place of innumerable exellences, which are an object fit to be resorted to and the which has destroyed the famous prowess of foes (like

१—महुसवीण तथा महुरसवाण इत्यपि पाठ. मधुस्रावी जिनों को नमस्कार हो।

attachment or which has destroyed enemies and which is well-known for purity), If I am lacking in the profound religious meditation oh Purifier of the universe (or pure in the worlds) ! I am fit to be killed and hence alas, I am undone (40)

अस्त्रशस्त्रविघातक

देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तु–सार !
　　ससारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ ! ।
त्रायस्व देव ! करुणाहृद ! मा पुनीहि,
　　सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशे ॥४१॥

अखिल वस्तु के जान लिये है सर्वोत्तम जिसने सब सार।
हे जगतारक ! हे जगनायक ! दुखियो के हे करुणागार॥
वन्दनीय हे दयासरोवर ! दीन दुखी का हरना त्रास।
महा-भयङ्कर भवसागर से, रक्षा कर अब दो सुखवास॥

श्लोकार्थ–हे देवेन्द्रवन्द्य सर्वज्ञ, जगवतारक, त्रिलोकीनाथ, दयासागर, जिनेन्द्रदेव ! आज मुझ दुखिया की रक्षा करो तथा अतिभयानक दु ख-सागर से बचाओ।

सुरगन वन्दित दयानिधान, जगतारन जगपति जगजान।
दुखसागर तें मोहि निकास, निरभै थान देहु सुखरास॥

४१ ऋद्धि–ॐ ह्री अर्हं णमो वप्पलाहकारयाण अमइसवीण।

१–अमृतस्रावी जिनो को नमस्कार हो।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ब्लूं नमः स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र का जाप करने से वैरी के अस्त्र शस्त्रादि कुण्ठित हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं जगन्नायकाय श्रीजिनाय नमः।

Oh object of worship for the lords of gods! Conversant with the essence of every object! Saviour from this worldly existence (the ferryman that enables to cross the ocean of existence)! Pervader of the Universe! Ruler of the world! save me, oh God! oh reservoir of compassion! purify me who am now-a-days sinking in the terrifying sea of sufferings (41)

स्त्रीसम्बन्धिसमस्तरोगशामक

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः[1]।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

एकमात्र है शरण आपकी, ऐसा मैं हूँ दीनदयाल।
पाऊँ फल यदि किञ्चित करके, चरणों की सेवा चिरकाल॥
तो हे तारनतरन नाथ हे, अशरण शरण मोक्षगामी।
बने रहें इस परभव मे बस, मेरे आप सदा स्वामी॥

१—सन्तति इत्यपि पाठः।

श्लोकार्थ—हे नाथ! आपकी स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नही रखता, केवल यही चाहता हूँ कि भव भवान्तरो मे सदा आप ही मेरे स्वामी रहे, जिससे कि मैं आपको अपना आदर्श बना कर अपने को आपके समान बना सकू। ४२॥

मैं तुम चरन कमल गुन गाय, वहुविधि भक्ति करी मन लाय।
जन्म जन्म प्रभु पावहु तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि॥

४२ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो इत्थिरत्तरोअणासयाण अक्खीणमहाणसाण[1]।

मन्त्र ॐ ह्री श्री क्ली ऐ अर्हं असिआउसा भूर्भुव स्व चक्रेश्वरी देवी सर्वरोग भिद भिद ऋद्धि वृद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—श्रद्धापूर्वक इस मत्र का प्रतिदिन १०८ वार जाप करने से स्त्रीसम्बन्धी समस्त कठिन रोगो का नाश होता है और सर्व सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

ॐ ह्री अशरणशरणाय श्रीजिनाय नम.।

Oh Lord! if there can be any reward whatsoever for my having been devoted to Thy lotus-feet for a series of births, mayest Thou yield protection to me who have Thee as the only refuge (or Thee alone as the refuge) and mayest Thou alone be my master in this world and even in my future life (incarnations) (42)

१—अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी जिनो को नमस्कार हो।

बन्धनमोचक एवं वैभववर्द्धक

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः[१],
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥४३

(आर्या छन्द)

जननयनकुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

हे जिनेन्द्र ! जो एकनिष्ठ तव, निरखत इकटक कमल-वदन ।
भक्तिसहित सेवा से पुलकित, रोमाञ्चित है जिनका तन ॥
अथवा रोमावलि के ही जो, पहिने हैं कमनीय वसन ।
यों विधिपूर्वक स्वामिन् तेरा, करते हैं जो अभिनन्दन ॥

(४४)

जन-दृगरूपी 'कुमुद' वर्ग के, विकसावनहारे राकेश[२] ! ।
भोग भोग स्वर्गों के वैभव, अष्टकर्ममल कर निःशेष ॥
स्वल्पकाल मे मुक्तिधाम की, पाते हैं वे दशाविशेष ।
जहाँ सौख्य साम्राज्य अमर है, आकुलता का नही प्रवेश ॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर ! जो भव्यजन उपरोक्त प्रकार से प्रमादरहित होकर आपके देदीप्यमान मुखारविन्द

१—'लक्ष लक्ष्य शरव्यकम्' इत्यभिधानचिन्तामणिकोषे का ३, श्लोक ४४१, २—चन्द्र ।

की ओर टकटकी लगाकर और सघन तथा उठे हुए रोमाञ्च-रूपी वस्त्र पहिन कर विधिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, वे भव्य देवलोक की सुखकर विविध सम्पत्तियो को भोग कर अष्टकर्मरूपी मल को आत्मा से दूर कर अविलम्ब अविनाशी मोक्ष सुख पाते है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इहि विधि श्रीभगवन्त, सुजस जे भविजन भाषहिं।
ते निज पुण्य भडार, सचि चिरपाप प्रनासहिं॥
रोम रोम हुलसंत अग, प्रभु गुन मन घ्यावहिं।
स्वर्ग सम्पदा भुज, वेग पचम गति पावहिं॥
यह 'कल्याण मन्दिर' कियो, कुमुदचन्द्र की बुद्धि।
भाषा कहत बनारसी, कारन समकित सुद्धि॥

४३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वदिमोअगाण सव्वसिद्धायदणाण[1]

मत्र – ॐ नमो भगवति। हिडिम्बवासिनि,। अल्लल्लमा-सप्पियेन हयलमडलपइट्ठिए तुह रणमत्ते पहरणदुट्ठे आया-समडि। पायालमडि सिद्धमडि जोइणिमडि सव्वमुइमडि कज्जल पडउ स्वाहा।

(—श्री भैं० प० क० अ० ९ श्लोक० २२)

विधि—अँधियारी अष्टमी के दिन ईशान की ओर मुख करके इस मत्र का जाप जपे। काले धतूरे के तेल का दीपक जला कर नारियल की खोपडी मे काजल पाडे। उस काजल से कपाल पर त्रिशूल का निशान बनाने तथा नेत्रो मे लगाने से सब प्रकार के भय नष्ट होते हैं और चित्त की उद्विग्नता

१—सम्पूर्ण-सिद्धायतनो को नमस्कार हो।

ॐ ह्री चित्तसमाधि स (सु') सेविताय श्रीजिनाय नम ।

४४ ऋद्धि ॐ ह्री अर्हं णमो अक्खयसुहृदायणस्स वड्ढमाणवुद्धिरिसिस्स ।

मत्र —ॐनट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठनट्ठससारे ।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठे अट्ठगुणाधीसर वदे ॥

विधि—राई, नमक, नीम के पत्ते, कडवी तूमडी का तेल तथा गूगल इन पाचो चीजो को एकत्रित कर उक्त मत्र से मत्रित करे, पश्चात् पिछले पहर प्रतिदिन ३०० वार हवन करने से रोग, दुश्मन तथा कष्टो का नाश होता है ।

ॐ ह्रीं परमशातिविधायकाय श्रीजिनाय नम ।

The poet sume up the paneggric and suggests his name

Oh Lord of the Jinas ! oh Omni-potent Being ! the Bhavyas who compose Thy hymn in accordance with the prescribed rules, with their mind--thus concentrated, with portions of their body thickly covered up with hair standing erect and with their eyes (attention) fixed upon the pure face-lotus of Thy image, and whose heap of dirt is destroyed, attein in no time, oh Moon (in opening) the night-lotuses (Kamuda-Chandra) (in the

---

१— वर्धमानवुद्धि ऋद्धिधारी ऋषि को नमस्कार हो ।

श्रीपार्श्वनाथाय नम

श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिप्रणीता

कल्याणमन्दिरस्तोत्रपूजा

पूर्व-पीठिका

श्रीमद्गीर्वाणसेव्य प्रबलतरमहा-मोहमल्लातिमल्ल ।
कान्त कल्याणनाथं, कठिनशठमनो-जातमत्तेभसिंहम् ॥
नत्वा श्रीपार्श्वदेव, कुमुदविधुकृतो, रम्यकल्याणधाम्न ।
स्तोत्रस्योच्चै विशाल, विधिवदनुपम, पूजन कथ्यतेऽत्र ॥

पञ्चवर्णेन चूर्णेन, कर्त्तव्य कमल वर ।
वेदवार्धिकर वेद्या, कर्णिकामध्यग बुधै. ॥
धौतवस्त्रधर. प्राज्ञ., श्लेष्मादिव्याधिवर्जित ।
बाह्याभ्यन्तर-सशुद्धो, जिनपूजा-विधानवित् ॥
गुरोराज्ञा विधायोच्चै., शिरस्या-दरतस्तत: ।
पृष्ट्वा सङ्घपति पूजा-प्रारम्भ: क्रियतेऽञ्जसा ॥
आदौ गन्धकुटीपूजा, विधायामल-वस्तुभि ।
पञ्चानामर्हदादीना, ततोऽर्चा परमेष्ठिनाम् ॥

ततो गत्वा गुरोरग्रे, भारती-मुनि-पूजन ।
कृत्वेलाशुद्धिकार्यं च, क्रमेणागमकोविदै ॥
ततोऽम्लाना च सामग्री, कृत्वा सद्गी वुधोत्तम ।
पूजनं पार्श्वनाथस्य, कुर्यान्मन्त्र-पुरस्सरम् ॥

एतत्पद्यसप्तक पठित्वा स्वस्तिकस्योपरि पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

====

श्रीपार्श्वनाथस्तवन

(सोरठा छन्द)

पारस प्रभु को नाउ, सार सुधासम जगत मे ।
मैं बाकी बलि जाँउ, अजर अमर पद मूल यह ॥

हरिगीता छन्द (२८ मात्रा)

राजत उतग अशोक तरुवर, पवन-प्रेरित थर--हरै ।
प्रभु निकट पाय प्रमोदनाटक, करत मानो मन हरै ॥
तस फूल गुच्छन भ्रमर गुजत, यही तान सुहावनी ।
सो जयो पार्श्व जिनेन्द्र पातक, हरन जग चूड़ामनी ॥
निज मरन देखि अनग डरप्यो, सरन ढूढत जग फिरयो ।
कोई न राखै चोर प्रभु को, आय पुनि पायन गिरयो ॥
यो हार, निज हथियार डारे, पुष्पवर्षा मिस भनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग चूडामनी ॥
प्रभु अग नील उतगगिरि तैं, वानिशुचिसरिता ढली ।
सो भेदि भ्रम गजदत पर्वत, ज्ञान-सागर मे रली ॥

नय-सप्त-भंग-तरंग-मण्डित, पाप-ताप - विनाशिनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

चन्द्रार्चिचय-छवि-चारु चंचल, चमर-वृन्द सुहावने ।
ढोले निरन्तर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बने ।।
यह नीलगिरि के शिखर मानो, मेघ झरि लागी घनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

हीरा जवाहर खचित बहुविध, हेम-आसन राजये ।
तहँ जगतजनमनहरन प्रभुतन, नील वरन विराजये ।।
यह जटिल वारिजमध्य मानो, नीलमणिकणिका बनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

जगजीत मोह महान जोधा, जगत मे पटहा दियो ।
सो शुक्ल-ध्यान-कृपानबलजिन, विकट वैरी वश कियो ।।
ये बजत विजय महानदुन्दुभि, जीत सूचै प्रभु तनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

छद्मस्थ पद मे प्रथम दर्शन, ज्ञान चारित आदरे ।
अब तीन तेई छत्रछल सो, करत छाया छवि भरे ।।
अतिधवल रूप अनूप उन्नत, सोमविम्ब-प्रभा हनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

द्युति देखि जाकी चन्द्र लाजे, तेज सों रवि लाजई ।
तव प्रभा-मण्डल जोग जग मे, कौन उपमा छाजई ।।
इत्यादि अतुल विभूतिमंडित, सोहये त्रिभुवन धनी ।
सो जयो पार्श्वजिनेन्द्र पातक, हरन जग-चूडामनी ।।

या अगम महिमा सिन्धु चक्री, शक्र पार न पावही ।
तजि हास भय तुम दास "मथुरा" भक्तिवश यश गावही ।।

अब होहु भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं।
कर जोरि यह वरदान मागों, मोक्षपद जावत लहौं।

स्थापना

प्राणतस्व' समायात, फणिलाञ्छन-सयुतम्।
वामामातृसुत पार्श्व यजेऽह तद्गुणाप्तये ॥

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! मम हृदये अवतर अवतर सवौषट्। इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। इति स्थापनम्।

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र! मम हृदयसमीपे सन्निहितो भव भव वषट्। इति सन्निधिकरणम्। परिपुष्पाञ्जलि क्षिपाम.।

अष्टकम्

वियद्गङ्गासिन्धु - प्रमुखशुचितीर्थाम्बुनिवहैः।
शरच्चन्द्राभासै, कनकमय-भृङ्गार-निहितै ॥
यजेऽहं पार्श्वेश, सुरनरखगाधीशमहित।
चिदानन्दप्राज्ञ, कमठ-रचितोपद्रव-जितम् ॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जलम्।

स्फुरद्गन्धाहूत-प्रचुर-फणिसरुद्ध – तरुजै।
रसैः कर्पूरास्यै र्निविडभवसन्तापहरणै.॥यजे०

ॐ ह्री कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय चन्दनम।

अखण्डैः शालीयै-रपगत-तुषै-रक्षतमयै ।
प्रपुञ्जैरानन्द-प्रणयजनकै र्नेत्रमनसाम् ॥
यजेऽहं पार्श्वेश, सुरनरखगाधीशमहितं ।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ-रचितोपद्रव-जितम् ॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अक्षतम् ।

मरुद्वाल्लद्भूतै - र्विकचसरसी - जातबकुलैः ।
लवङ्गैरामोद-भ्रमरमिलितैः पुष्पनिचयै ।
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय पुष्पम् ।

सदन्नैरापूर्णं - प्रवरघृतपक्वान्नसहितै ।
रसाढ्यै र्नैवेद्यै - रतुलकाञ्चनपात्रविधृतै ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय नैवेद्यम् ।

हविर्जातै रम्यै - र्विदलितदिशाकीर्णतमसैः ।
प्रदीप्तै र्माणिक्यै र्विशदकलधौतार्चिरमलै ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय दीपम् ।

सुकर्पूरोत्पन्नै - रमरतरु - सच्चन्दनभवै ।
सुधूपोघै श्लाघ्यै-र्मिलदलिगणागुञ्जितरवै ॥यजे०
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय धूपम् ।

सुपक्वैः नारङ्ग-क्रमुकशुचिकूष्माण्डकरकै. ।
फलै र्मोचाम्राद्यै र्विबुधशिवसम्पद्वितरणै ॥यजे०॥
ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय फलम् ।

जलै र्गन्धद्रव्यै र्विशदसदकैः पुष्पचरुकै ।
सुदीपै सद्धूपै र्बहुफलयुतैरर्घ्यनिकरै ॥
यजेऽहं पार्श्वेशं, सुरनरखगाधीशमहितं ।
चिदानन्दप्राज्ञं, कमठ-रचितोपद्रव-जितम् ॥

ॐ ह्रीं कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

जयमाल

शताब्दजीवी समशत्रुमित्रो, हरित्प्रभाङ्गो हतमारदर्पं ।
सपादचापद्वयतुङ्गकायो, यस्तं सदा पार्श्वजिनं नमामि ॥

निराभूपशोभं, परिध्वस्तलोभं,
चिदानन्दरूपं, नतानेकभूपं ।
स्तुवे पार्श्वदेवं, भवाम्भोधिनावं,
त्रिषड्दोषहीनं, जगत्पूज्यमानम् ॥

शिवं सिद्धकार्यं, वरानन्ततुर्यं,
रमानाथमीशं, जितानङ्गपाशम् ॥स्तुवे०॥

शतेन्द्रार्च्यपादं, स्फुरद्दिव्यनादं,
गणाधीशमाद्यं, लसद्देववाद्यम् ॥स्तुवे०॥

हरं विश्वनेत्रं, त्रिशुभ्रातपत्रं,
क्षुधावह्निनीरं, द्विधासङ्गदूरम् ॥स्तुवे० ॥

दिशाचेलवन्त, वरं मुक्तिकान्त,
निरस्तारिमोह, पुरु सौख्यगेहम् ॥

स्तुवे पार्श्वदेव, भवाम्भोधिनाव,
त्रिपड् दोषहीन, जगत्पूज्यमानम् ॥

जराजन्ममुक्त, वरानन्दयुक्त,
हतक्रोधमान, कृतज्ञानदानम् ॥ स्तुवे० ॥

अविद्यापहार, सुविद्यागभीर,
स्वयदीप्तिमूर्ति, जगत्प्राप्तकीर्तिम् ॥ स्तुवे० ॥

यतिवरवृपचन्द्र, चित्कलापूर्णचन्द्र ।
विमलगुणसमृद्ध, नम्रनागामरेन्द्रम् ॥

जिनपतिमहिधार, दुःखसन्तापहार ।
भजति नमति सार, सौख्यसार लभेत ॥

ॐ ह्री कमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जयमालार्घ्यम् ।

सर्वजीवदयायुक्त, सर्वलौकान्तिकार्चित ।
पार्श्वदेव श्रिय दद्यात्, नित्य पूजाविधायिनाम् ॥

इत्याशीर्वाद ।

====

अष्टदलकमल पूजा

कल्याण-मन्दिरमुदार-मवद्यभेदि—
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
ससारसागर-निमज्ज-दशेपजन्तु—
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥

सन्मङ्गलालयमुदामिकलङ्कहारि,
ससारभीतमनसामभयप्रदायि ।
जन्माब्धिमध्य असुमत्तरि यत्पदाब्ज,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥१॥

ॐ ह्री भवसमुद्रपतज्जन्तुतारणाय क्लीमहावीजाक्षर
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यस्य स्वय सुरगुरु र्गरिमाम्बुराशे,
स्तोत्र सुविस्तृतमति र्न विभु र्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो–
स्तस्याहमेप किल सस्तवन करिष्ये ॥

वाचस्पति र्न गुरुवारिनिधे समर्थ,
कर्तु धिया स्तवमनन्तगुणस्य यस्य ।
तीर्थाधिपस्य कमठोद्धतगर्वहर्तु,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥२॥

ॐ ह्री अनन्तगुणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितु स्वरूप—
मस्मादृशा. कथमधीश ! भवन्त्यधीशा ।
धृष्टोऽपि कोशिकशिशु र्यदि वा दिवान्धो,
रूप प्ररूपयति कि किल धर्मरश्मे ॥

सक्षेपतोऽपि भुवि विस्तरितु महत्त्व,
दक्षा भवन्ति न हि तुच्छधियो यदीयम् ।
घूका जडा दिनकरस्य यथा स्वरूप,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥३॥

ॐ ह्री चिद्रूपाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान्गणयितु न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयस प्रकटोऽपि यस्मा—
न्मीयेत केन जलधे र्नंनु रत्नराशि ॥

निर्मोह ? कोऽपि मनुजो गुणसहते र्नो,
सख्या करोति गहनार्थपदस्य यस्य ।
रत्नस्य वा प्रलयवायुहतस्य वार्धे—
स्त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥४॥

ॐ ह्री गहनगुणाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

षोडशदलकमलपूजा

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र—
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥

दृष्टे पलायनपराः किल भूतवर्गा,
यस्मिन् विमुच्य मनुजानिह सग्रहीतान् ।
दोषाचरा पशुपताविव गोसमाज,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥९॥

ॐ ह्रीं दुष्टोपवगविनाशकाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्व तारको जिन ! कथ भविना त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥

ससारिणा भवति यो हृदि सस्थितोऽपि,
सन्तारकः किल निरन्तरचिन्तकाना ।
भस्त्रागतो मरुदिवाम्बुनिधौ समर्थ—
स्त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥१०॥

ॐ ह्रीं सुध्येयाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावा
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुज पयसाथ येन,
पीत न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥

येनाहृत हरिहरादि—महत्त्वमुच्चैः,
सोऽनन्तको जिनवरेण हतो हि येन ।
वारानिधेरिव जल बडवानलेन,
तं पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥११॥

ॐ ह्रीं ग्रनङ्गमथनाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय ग्रर्घ्यम् ।

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना—
स्त्वा जन्तव कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधि लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महता यदि वा प्रभावः ॥

य वाहका हृदि जना. कथमुत्तरन्ति,
ससारवारिधिमहो गुरुमप्यतुल्यम् ।
चिन्त्यो न जातु महता महिमात्र लोके,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥१२॥

ॐ ह्रीं ग्रतिशयगुरवे क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्री पार्श्वनाथाय ग्रर्घ्यम् ।

क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथमं निरस्तो,

ध्वस्तस्तदा वद कथ किल कर्मचौराः

प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,

नीलद्रुमाणि विपनानि न किं हिमानी ॥

जित्वा क्रुधं पुनरलं शठमोहदस्यु—

र्येन प्रणाशित उदारगुणेन चित्रं ।

सौम्येन कर्दमजमत्र हि मेनवाश्रु

त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥१३॥

ॐ ह्रीं जितक्रोधाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप—

मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे ।

पूतस्य निर्मलरुचे र्यदि वा किमन्य—

दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥

य साधवो हृदयतामरसे विकासे,

ध्यायन्ति शुद्धमनसो यत ईड्यमानम् ।

चित्तादृतेन हि पदं वपुपीह पूत,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१४॥

ॐ ह्रीं महन्मृग्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम ।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥

यस्येह मानव उपैति पदं गरिष्ठं,
सद्ध्यानतो झटिति संहनन विसृज्य ।
हैमं यथानलवशाद्विदृषद्विशेषं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१५॥

ॐ ह्रीं कर्मकिट्टदहनाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥

योऽन्तर्गतोऽपि भविनो वपुरत्र वेगा--
न्निर्नाशयत्यखिलदुःखमयं विचित्रम् ।
माध्यास्थिकः कलिमिवाशु महत्तरः स्वं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१६॥

ॐ ह्रीं देहदैहिकलहंनिवारकाय क्लीमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्धया,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥

विद्वद्भिरत्र यदभिन्नधियायमात्मा,
सञ्चिन्तितः फलति मुक्तिपदं हि सद्यः ।
मान्यं श्रयेति सलिलं विषनाशकं वा,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१७॥

ॐ ह्रीं संसारविषसुधोपमाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश ! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥

ये ध्वस्तमोहतिमिर-कुपथप्रलग्नाः,
कृष्णादिबुद्धिमनुदारमुपाश्रयन्ति ।
नेत्रामया इव यथार्थ-विवेकहीना,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१८॥

ॐ ह्रीं सर्वजनवन्द्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

धर्मोपदेशसमये सुविधानुभावा
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ स महीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥

सद्धर्मजल्पनविधौ वसुधारुहोऽपि,
शोकातिरिक्त इह यस्य किमन्यवृत्तं ।
भानूदये सति यथा किल वारिजातं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥१६॥

ॐ ह्रीं अशोकवृक्षविराजमानाय क्लीमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !,
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥

रेजे सुरप्रसव – सततिवृष्टि - रुद्धा,
स्वामोदवासितदिशावलया यदीया ।
यत्पादमाश्रितजना भृशमूर्ध्वगाः स्यु–
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥

ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिशोभिताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥

गम्भीरहृज्जलधिजातवचो हि यस्य,
प्रीणाति चारु जनतामममृतोपमं तत् ।
निःस्वाद्य गच्छति जनः किल मोक्षधाम,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२१॥

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिविराजिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥

यस्य प्रकीर्णकयुगं वदतीव लोकान्,
दुग्धाब्धिफेनधवलं सुरवीज्यमानं ।
वन्दारुरुग्रगतिरेव जिन सदेति,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२२॥

ॐ ह्रीं सुरचामरविराजमानाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै-
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥

महेमरत्नमयकेशरि - विष्टरस्थ,
य भव्यकेकिन घनोऽस्य नदन्तमजस्र ।
जाम्बूनदाचलशिखापरगर्जमाना,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कृतार्थः ॥३॥

ॐ ह्रीं पीठत्रयनाथनाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यं ।

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥

श्यामप्रभावलयतोऽतिविचित्रकान्तिः,
रेजे ह्यशोकतरुरुच्चतमोऽपि यस्य ।
संसर्गतो भवति रागयुतो न कोऽत्र,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कृतार्थः ॥४॥

ॐ ह्रीं भामण्डलमण्डिताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यं ।

विंशतिदलकमल पूजा

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन—
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥
गीर्वाणदुन्दुभिरतीव वदत्यजस्र,
मेनं निषेवय जितं प्रविहाय मोहम्।
यस्मै त्रिविष्टपजनाय नदन्नभीक्ष्णं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२५॥

ॐ ह्रीं देवदुन्दुभिनादाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम्।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्र—
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥
येन प्रकाशित इहेत्य कृतत्रिरूपो,
लोकत्रयोधवलछत्रमिषेण चन्द्रः।
सोऽभ्यह किमिव यस्य करोति सेवां,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२६॥

ॐ ह्रीं छत्रत्रयमहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम्।

स्वेन प्रपूरित जगत्त्रयपिण्डितेन,

कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन ।

माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन,

सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥

य शोभते मणिसुवर्णसुरोप्यजेन,

तेज प्रभाव-शुचिकीर्तिसमुच्चयेन ।

शालत्रयेण-दिवि चामरनिर्मितेन,

तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यै. ॥२७॥

ॐ ह्रीं शालत्रयाधिपतये क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

दिव्यस्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपाना-

मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।

पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,

त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥

माल्य सुभक्तिभरनम्रसुराधिपाना,

सन्त्यज्य चारुमुकुट पदमाश्रित हि ।

यस्यानिश सुमनसा महदेव सेव्यं,

त पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥२८॥

ॐ ह्रीं भक्तजनानवनपतिराय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्व नाथ ! जन्मजलधे विपराङ् मुखोऽपि,
यत्तारयत्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ।
युक्त हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्र विभो ! यदसि कर्मविपाकशून्य. ॥

यस्तारयत्यततुरङ्गभृतो विचित्र,
ससारवार्धिविमुखोऽपि सुभक्तियुक्तान् ।
यन्मृत्तिकामय इवात्र घटोऽम्बुराशौ,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥२९॥

ॐ ह्री निजपृष्ठलग्नभयतारकाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ; दुर्गतस्त्व,
कि वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ,
अज्ञानवत्यपि सदैव कथचिदेव,
ज्ञान त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु ॥

य सर्वलोकजनताधिपति र्दरिद्रो,
व्यक्ताक्षरोऽप्यलिपिरित्युदितो महाज्ञ ।
ज्ञानी किलाज्ञ इति विस्मयनीयमूर्ति.,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥३०॥

ॐ ह्री विस्मयनीयमूर्तये क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम ।

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥
या लोकमूर्द्धवितता हि खलेन कोपा—
दुत्थापिता कमठपूर्वचरेण धूलिः ।
आच्छादिता तनुरहो न तथापि यस्य,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३१॥

ॐ ह्रीं कमठोत्थापितधूल्युपद्रववर्जिताय क्लींमहाबीजाक्षर सहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यद्गर्जदूर्जित - घनौघ - मदभ्रभीमं,
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥
नीरं विमुक्तमसुरेण सवज्रपातं,
वर्षाभवं घनतरं यदुपद्रवाय ।
तस्यासुरस्य बत दुःखदमेव जातं,
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३२॥

ॐ ह्रीं कमठकृतजलधारोपसर्गनिवारकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति—मर्त्यमुण्ड,

प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र विनिर्यदग्नि,

प्रेतव्रज प्रति भवन्तमपीरितो य,

सोऽस्याभवत्प्रतिभव भवदु खहेतु ॥

पैशाचिको गण उपद्रव—भूरियुक्तो,

दैत्येन यं प्रतिनियोजित उद्धतेन ।

तद्दैत्यकस्य पुनरग्र - भयप्रदोऽभूत्,

त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥३३॥

ॐ ह्रीं कमठकृतपैशाचिकोपद्रवजयनशीलाय, क्लीमहा-बीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य—

माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्या ।

भक्त्योल्लसत्पुलक - पक्ष्मलदेहदेशाः,

पादद्वय तव विभो भुवि जन्मभाज ।

पादारविन्दयुगल प्रणमन्ति भक्त्या,

यस्य प्रशान्तमनस. किल धर्मवन्त ।

सद्भक्तय. परिहृताखिल-गेह-कार्या—

स्तं पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥३४॥

ॐ ह्रीं धार्मिकवान्दताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम ।

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरता गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥
यन्नाम नैव श्रुतमत्र जनेन येन,
स प्रायशो हि भववारिनिधौ निमग्न ।
श्रुत्वा गत शिवपुर बहवस्त्रिशुद्धया,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥३५॥

ॐ ह्रीं पवित्रनामधेयाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुग न देव ;
मन्ये मया महितमीहितदानदक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश . पराभवाना,
जातो निकेतनमह मथिताशयानाम् ॥
यत्पादपङ्कजमल न हि येन पूत,
सपूजित जगति ससरणान्तरेऽपि ।
दुःखाग्निना भवति सोऽग्रचरः सदैव,
स्त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥३६॥

ह्रीं पूतपादाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥

मोहान्धकारपटलावृतचक्षुषा यो,
नैवेक्षितो भुवि जवञ्जवकूपगेन ।
येनात्र तस्य मनुजत्वममलं निरर्थं
तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३७॥

ॐ ह्रीं दर्शनीयाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥

किं वा श्रुतोऽपि यदि येन सुपूजितोऽपि
किं वाक्षितोऽपि हृद्भक्तिभराद्धृतो न ।
यस्तस्य नैव फलदः खलु हीनभक्ते -
स्तं पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥३८॥

ॐ ह्रीं भक्तिहीनजनमाध्यस्थाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य ;
कारुण्य - पुण्यवसते वशिनां वरेण्य ?
भक्त्या नते मयि महेश ? दयां विधाय,
दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥

वात्सल्यवान् जननदुःख - कदर्थितेषु,
यः प्रत्यह नत - जनेषु दयासमुद्र ।
सद्भक्तिभावकलितेषु भृश शरण्य
स्त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यैः ॥३९॥

ॐ ह्रीं भक्तजनवत्सलाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यंम् ।

निः सख्यसारशरणं शरणं शरण्य—
मासाद्य सादितरिपुप्रथितावदातम् ।
त्वत्पादपङ्कजमपि प्रणिधानवन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन ; हा हतोऽस्मि ॥

भूयिष्टभाग्यसदनं मदनाग्निनीरं,
यत्पादतामरसयुग्ममनल्पतेजः ।
सपूज्य गच्छति जन· शिवतामनर्घ्यं
त पार्श्वनाथमनघं प्रयजे कुशाद्यैः ॥४०॥

ॐ ह्रीं सौभाग्यदायकपदकमलयुगाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यंम् ।

देवेन्द्रवन्द्य , विदिताखिलवस्तुसार—
ससारतारक ? विभो भुवनाधिनाथ ?
त्रायस्व देव करुणाह्रद ? मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशे. ॥

गीर्वाणनाथनुत — पादपयोजयुग्म—
स्त्राता भवाम्बुनिधिमग्नशरीरभाजाम् ।
य सर्वलोक - परमार्थ - पदार्थवेदी,
त पार्श्वनाथमनघ प्रयजे कुशाद्यै ॥४१॥

ॐ ह्री सर्वपदार्थवेदिने क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

यद्यस्ति नाथ , भवदङ्घ्रि—सरोरुहाणा,
भक्तेः फल किमपि सन्ततसञ्चिताया ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ? भूया',
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥

यत्पूर्वजन्मकृत—पुण्यवता जनाना,
सभाव्यते भवभवेऽपि हि यस्य सेवा ।
उन्मार्गवासितवता ननु पापभाजा,
त पार्श्वनाथमनघ' प्रयजे कुशाद्यै ॥४२॥

ॐ ह्री पुण्यबहुजनसेव्याय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय अर्घ्यम् ।

(शालिनी छन्द)

काशीदेशे बाराणसी-पुरेशो,यो बालत्वे प्राप्तवैराग्यभाव ।
देवेन्द्राद्यैः कीर्तित त जिनेन्द्र, पूर्णार्घ्येन प्रार्चये वार्मुखेन ॥

ॐ ह्रीं सर्वगुणसम्पन्नाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीपार्श्वनाथाय पूर्णार्घ्यम् ।

समुच्चय जयमाल

शतमखनुतपादं, शान्तकर्मारिचक्रं,
शमदमयमगेह, शङ्कर सिद्धकार्यम् ।
सरसिजदलनेत्रं, सर्वलौकान्तिकार्च्य,
सकलगुणनिधान, सस्तवे पार्श्वदेवम् ॥

भवजलनिधि-पततामुत्तारण, देवमनन्तगुण जनशरण ।
चिद्रूप बहुगुणसमुदाय,उत्तमगुणगण-हतभवपाश ॥
रम्यारम्य—गुणस्तवनीय, कर्मबन्ध — निर्बन्धमजेय ।
दुष्टोपद्रव नाशन—वीर, सुध्येय जितमन्मथशूर ॥
गरिमाक्रोधमहानल—कुशद, हृदि मृग्य महतामतिविशद ।
कर्मदाहतीव्राग्नि—मतुल्य, गतज्वरमात्मपद गतशल्य ॥
समृतिविपहरणामृत—कूप, पदनतनाग—नरामर—भूप ।
तृष्णाशोक—महारुज-मग्नित, नद्गमवच्छियत सुरमहित ॥

योजनमितदिव्यध्वनिनिनद,सुरचामर–वीज्य हतविपद ।
पीठत्रय–नायकमघमथन, हरितविभावलय गुणसदन ।।
दानवारिदुन्दुभि–सद्ध्वान, श्वेतातपवारण–गुणमान ।
मणिहेमार्जुन–शालत्रितय,पदनतभक्त–जनावनसुदय।।
पृष्ठलग्न–जनतारण –दक्ष, विस्मयनीय हतमदकक्ष ।
हतकमठोत्थापित-बहुधूलि,जितमुसलोपम-जलधारालि ।।
हतपैशाचिक विप्लवजाल, नतधर्मिष्ठजन गुणमाल ।
पूतनामधेय शिवभाज, वरपवित्रपाद जिनराज ।।
दर्शनीयमपहत घनपापं, भक्तिहीन—भविमध्यमरूप ।
भक्तिनम्रजन—वत्सलवन्त,भूरिभाग्य - दायकमरिहन्त ।।
लोकलोक पदार्थविवेद्य, पदनतसुकृति-जनैरभिवन्द्य ।
जन्मजरा-मरणच्युतदेवं, 'कुमुदचन्द्र'यतिकृतपदसेवम् ।।

। घत्ता ।

विश्वादिसेनान्वयव्योमतिग्म,सद्रूव्यवाशानिधिधर्मचन्द्र ।
देवेन्द्रसत्कीर्तित-पादयुग्म,श्रीपार्श्वनाथप्रणमामिभक्त्या ।।

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अर्हं क्रूरकमठोपद्रवजिताय श्रीपार्श्वनाथाय जयमालार्घ्यम् ।

य प्राग्विप्र इभोऽनु द्वादशदिवि, स्वर्गी तत खेचरः ।
पश्चादच्युतकल्पजो निधिपति , ग्रैवेयके मध्यमे ।।

इन्द्रोऽभूत्तत ईशता शुभवच, आनन्दनामानते ।
ग्रीर्वाणस्तत उग्रवशतिलक., पार्श्वेट् स वो रक्षतात् ॥

इत्याशीर्वाद, परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।
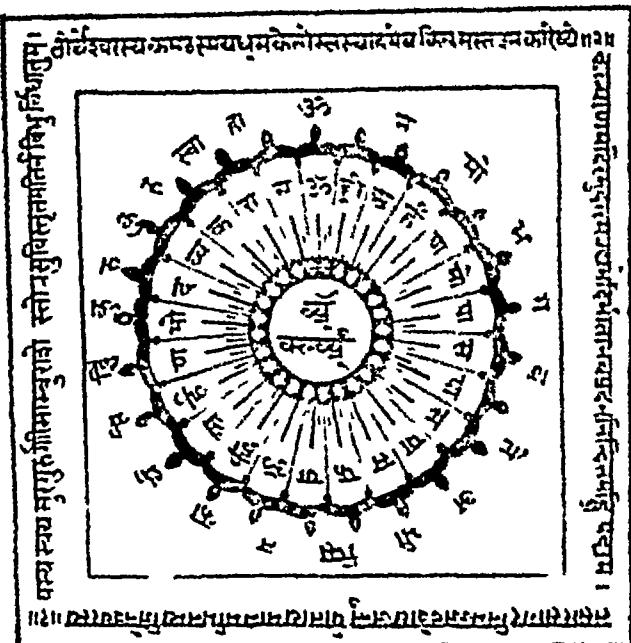
गुणे वेदाङ्कचन्द्राब्दे, शाके फाल्गुनमासके ।
कारजाख्यपुरे नून, पूजेय सुविनिर्मिता ॥

इति श्रीबलात्कार—गच्छीयभट्टारकेन
श्री महेंद्वेन्द्रकीर्तिना विरचिता ।

॥ कल्याणमंदिरपूजा समाप्ता ॥

यन्त्र, मंत्र, गुण वा फल विवरण

श्लोक १, २

ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो पास पास फर्ण ।
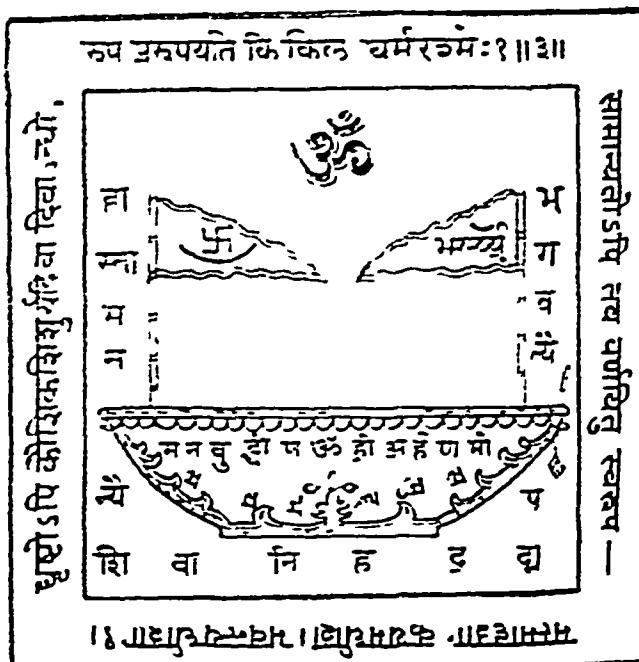
ॐ ह्री अर्हं णमो दव्वकराए ।

मत्र—ॐ नमो भगवते अभीप्सितकार्यसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा ।

गुण—इस ऋद्धिमत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से लक्ष्मी (धन) का लाभ एव मनोवाछित कार्य सिद्ध होत हैं ।

फल—प्रथम द्वितीय श्लोक सहित ऋद्धि-मत्र की भावपूर्वक आराधना से भद्दलपुर (भेलसा-विदिशा) के अत्यन्त भद्र परिणामी सुभद्र श्रेष्ठी के मनोभिलषित (इष्ट कार्यों) की सिद्धि हुई थी ।

श्लोक ३
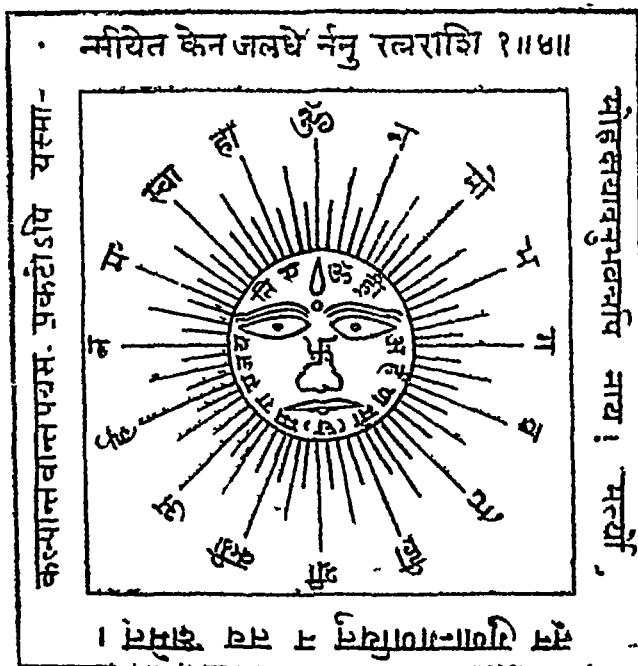
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो समुद्दे (द्द ?) भय (य ?) माम्यति (समन ?) बुद्धीण ।

मंत्र—ॐ भगवत्यै पद्मद्रहनिवासिन्यै नम. स्वाहा ।

गुण—इसके प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से पानी का भय नहीं रहता और न दरयाव मे डगमँगाता हुआ जहाज डूबता है ।

फल—पाटलिपुत्र (पटना) नगर के विक्रमसिंह राजा ने तृतीय श्लोकसहित ऋद्धि-मंत्र की भावसहित आराधना से रत्नो से लदे जहाज की समुद्र के तूफान से रक्षा की थी ।

श्लोक-४
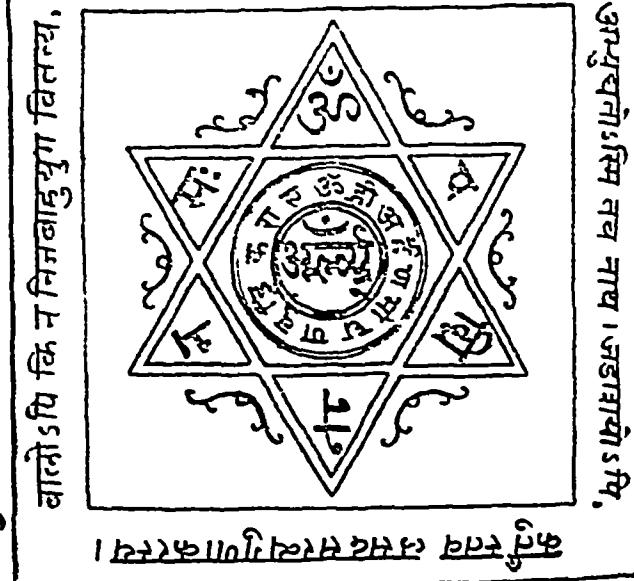
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो धम्मराए जयतिएं।

मंत्र—ॐ नमो भगवते ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः स्वाहा।

गुण—इस प्रकार मंत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से असमय मे गर्भपात वा अकालमरण नहीं होता और सन्तान चिरजीवी होती है।

फल—अयोध्या के राजा यश.कीर्ति की राजमहिषी यशस्वती देवी ने चतुर्थ काव्य सहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन कर अपनें गर्भ की रक्षा की और यशस्वी राजकुमार को प्रसव किया था।

श्लोक ५

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घणबुद्धि (वुड्ढि ?) कराए।

मंत्र—ॐ पद्मिने नमः ।

गुण—इस प्रकार इस मंत्र के प्रभाव तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रसाद से चोरी गया हुआ और जमीन मे गडा हुआ धन एवं गुमा हुआ गोधन प्राप्त होता है।

फल—कारंजा के भूषणदत्त महाजन ने पंचम काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना से अपनी गुप्त लक्ष्मी और चोरों द्वारा चराये हुए गोधन को प्राप्त किया था।

श्लोक ६

ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो पुत्तइच्छी (त्थि?) कराए।
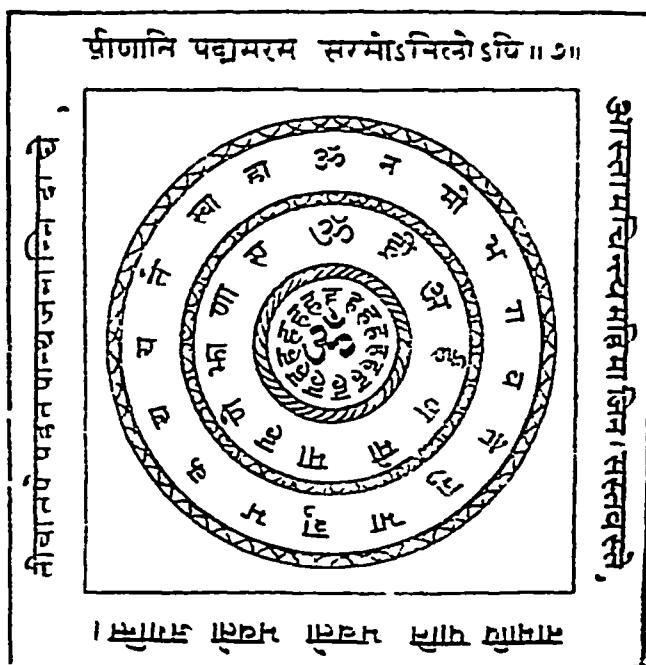
मत्र—ॐ नमो भगवते ह्री श्री श्रा श्री क्षा क्षी प्रौ ह्रौं नम (स्वाहा)।

गुण—सन्तति और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

फल—उज्जयिनी नगरी मे प्रसिद्ध हेमदत्त श्रेष्ठी ने एक मुनि के उपदेश से वृद्धावस्था मे षष्ठ काव्यसहित उक्त मत्र की आराधना से पुत्ररत्न को प्राप्त किया था।

श्लोक ७
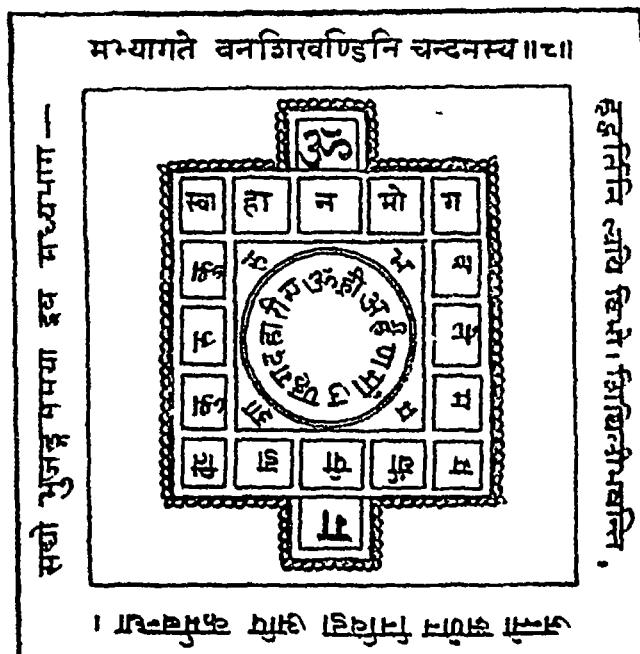
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो माहण झाणाए ॥

मंत्र—ॐ नमो भगवते शुभाशुभकथयित्रे स्वाहा ॥

गुण—परदेश गये हुये पति अथवा स्वजन सम्बन्धी की २७ दिन के भीतर खबर मिलती है। यंत्र को पास मे रखने से साधक जिसकी इच्छा करता है उसका आकर्षण साधक के प्रति होता है।

फल—हासी (जिला हिसार) की राजकुमारी प्रियगुलता ने अपने पति का जो विवाह के उपरान्त ही विदेश मे जीवन-यापन कर रहा था सप्तम काव्य सहित उक्त महामंत्र के प्रभाव से सकुशल समागम प्राप्त किया था।

श्लोक ८

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उन्ह (ण्ह ?) गदहारीए ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते मम सर्वाङ्गपीडाशांति कुरु कुरु स्वाहा ।

गुण—१८ प्रकार का उपदश, पित्तज्वर तथा सर्वप्रकार की उष्णता शान्त होती है ।

फल—श्रावस्ती नगरी का चण्डकेतु ब्राह्मण उपदंश की असह्य पीडा से मरणासन्न हो रहा था। अष्टमकाव्य-सहित उक्त मंत्र की आराधना से नवीन जीवन प्राप्त हुआ था ।

श्लोक ९

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो को प ह स ।
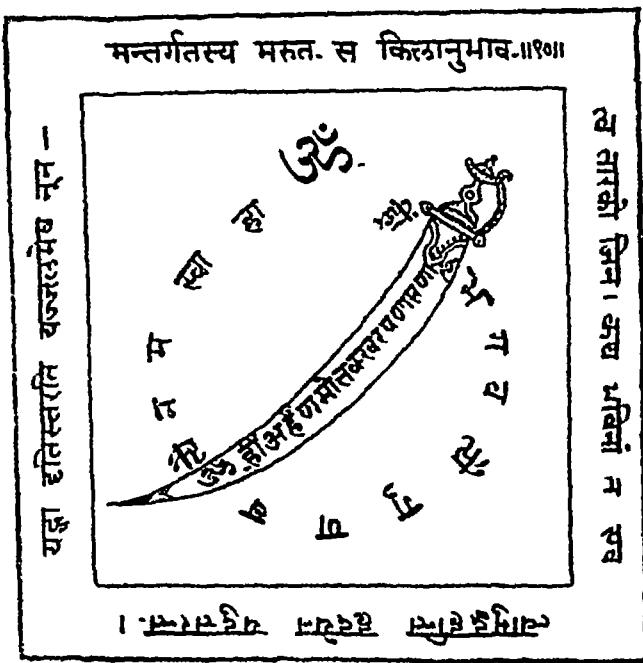
मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं ह्लीं त्रिभुवन ह्रूं स्वाहा।

गुण - सर्प, गोह, विच्छू और छिपकली आदि विषैले जन्तुओ का विष असर नही करता। विषैले जन्तुओ के सताये जाने पर ऋद्धि-मत्र को बोलते हुए १०८ वार झाडना चाहिये।

फल—काशीदेश के सिद्धसेन ब्राह्मण ने नवम काव्य-सहित मत्र की आराधना से काले सर्प द्वारा सताये हुए विदग्ध-सेन को प्राणदान दिया था।

श्लोक १०

ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो (वख?) रपणासणाए ॥
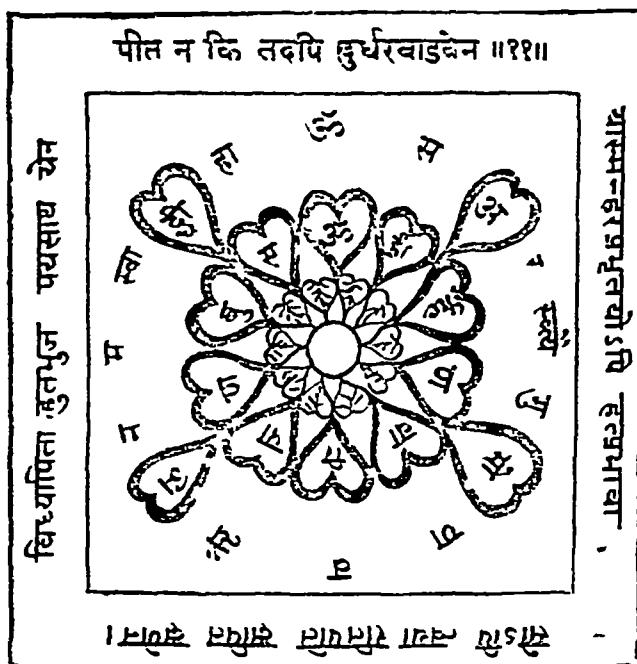
मत्र ॐ ह्री भगवत्यै गुणवत्यै नम स्वाहा ॥

गुण—चोर, ठग वगैरह के भय का नाश होता है।

फल—वाराणसी नगरी के राजा विश्वसेन ने भक्ति पूर्वक दशवें काव्यसहित मत्र की जाप जपने से चोरो, ठगो और डाकुओ द्वारा आतङ्कित प्रजा को अभयदान दिया था।

श्लोक ११

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वारिवाल (पालण?) बुद्धीए।
मत्र—ॐ सरस्वत्यै गुणवत्यै नम स्वाहा ॥

गुण—यत्र पास रखने से साधक पानी मे नहीं डूबता है। जैनशासन की रक्षिका देवी आराधक की अथाह जल से रक्षा करती है तथा कुदेवादिको का भय नष्ट होता है।

फल—मगधदेश के कचनपुर नगर के प्रतापी राजकुमार वें शत्रुओ द्वारा समुद्र मे गिराये जाने पर ग्यारहवें काव्यसहित उक्त मत्र की आराधना से अपनी रक्षा की थी।

श्लोक १२
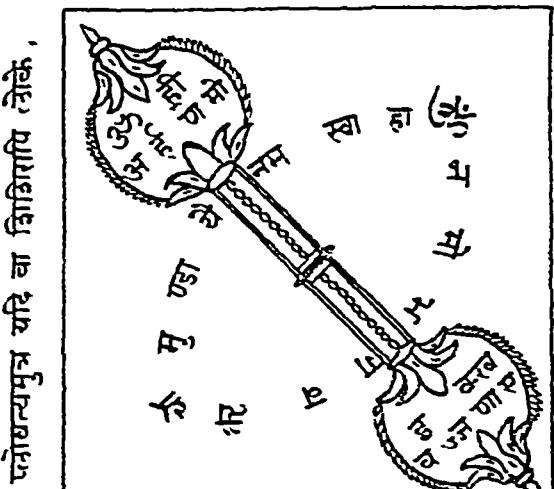
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अग्गल (भय) वज्जणाए।
मन्त्र ॐ नमो (भगवत्यै) चण्डिकायै नम स्वाहा।

गुण—हर प्रकार अग्निभय नष्ट होता हैं। चुल्लू भर पानी उक्त मन्त्र से मन्त्रित कर अग्नि पर डालने से वह शान्त हो जाती है और मन्त्र का आराधक उस अग्नि पर चल सकता है। तो भी जलता नही है।

फल—वाराणसी नगरी के देवदत्त बढई ने मुनि द्वारा उपदिष्ट कल्याणमन्दिर के बारहवें श्लोकसहित उक्त मन्त्र को आराधना से प्रचण्ड दावानल को शान्त किया था।

श्लोक १३

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इक्खवज्जणाए ।
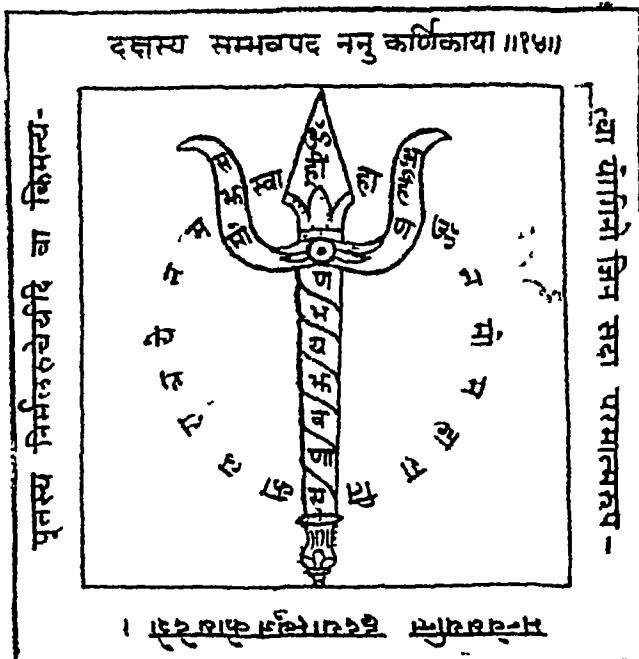
मत्र—ॐ नमो भगवत्यै)चामुण्डायै नम स्वाहा ।

गुण—सात दिन तक प्रतिदिन झारी भर पानी उक्त मत्र से १०८ वार मत्रित कर खारे जल के कुएँ वावडी आदि मे डालने से पानी अमृततुल्य हो जाता है।

फल—श्री जम्बूस्वामी के समय श्रावस्ती नगरी के सोमशर्मा ब्राह्मण ने अपने बगीचे की खारी वावडी को उक्त मत्र द्वारा अमृत के समान मधुर जल वाली करके जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की थी ।

श्लोक १४

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भ्रू (भ्ह?) सण (भय) भूस (भव?) णाए।
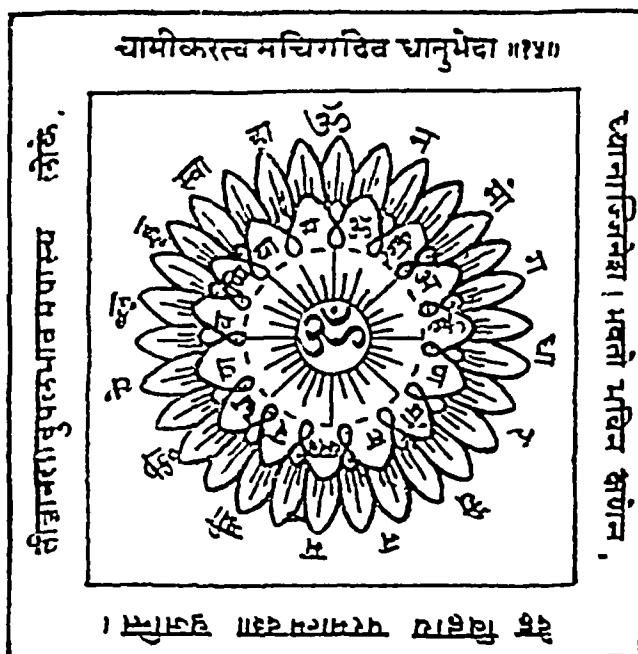
मन्त्र—ॐ नमो (महाराति?) कालरात्रि (त्रये?) नम. स्वाहा।

गुण—शत्रु क्रोध छोड कर वैरभाव तज देता है और निर्मल विचार वाला वन जाता है। अथवा उसका नाश हो जाता है।

फल—दतिया राज्य के राजकुमार भद्र ने अपने शत्रु राजा भीम का वैरभाव चौदहवें काव्यसहित उक्त मंत्र के आराधन से दूर कर अपना परममित्र बना लिया था।

श्लोक १५
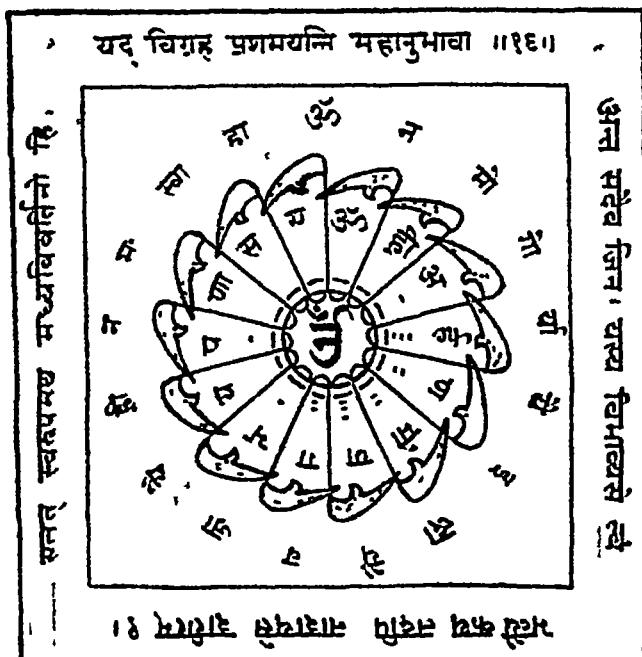
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तक्खरधणप (व ?) प्पियाए ।

मन्त्र—ॐ नमो गंधारि (रयै?) नम. श्रीं क्लीं ऐं ब्लूं ह्रूं स्वाहा ।

गुण—चोरी गई हुई वस्तु वापिस मिलती है ।

फल—राजगृही नगरी के दिव्यस्वामी ब्राह्मण ने १५ वें श्लोकसहित उक्त मन्त्र को सिद्ध करके चोरी गया हुआ अपना धन मन्त्राराधना के प्रभाव से पुन प्राप्त किया था ।

श्लोक १६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो णगभयपणासए।
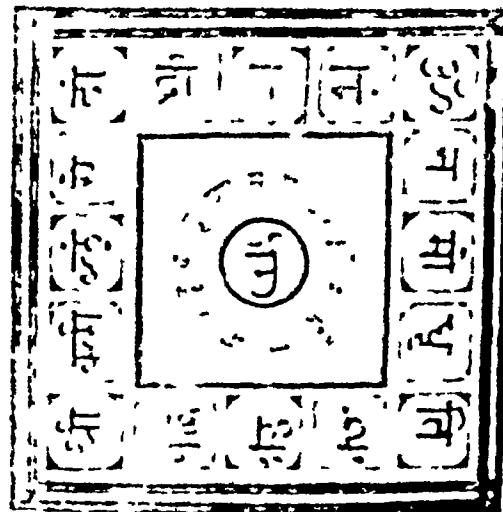
मन्त्र—ॐ नमो गौरी (गौर्यायै ?) इन्द्रे (इन्द्रायै ?) वज्रे (वज्रायै ?) ह्रीं नमः स्वाहा।

गुण—पर्वत पर भी उपसर्ग नहीं होता तथा बीहड वन में भी भय का नाश होता है।

फल—द्वारकापुरी नगरी में अर्थदत्त श्रेष्ठी ने जो कि दुष्ट डाकुओ द्वारा निर्जन वन में ले जाया गया था, कल्याणमन्दिर के १६ वें श्लोकसहित उक्त मन्त्र के चिन्तवन से छुटकारा पाया था।

श्लोक १८

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पासे सिद्धा सुणंति ? ।
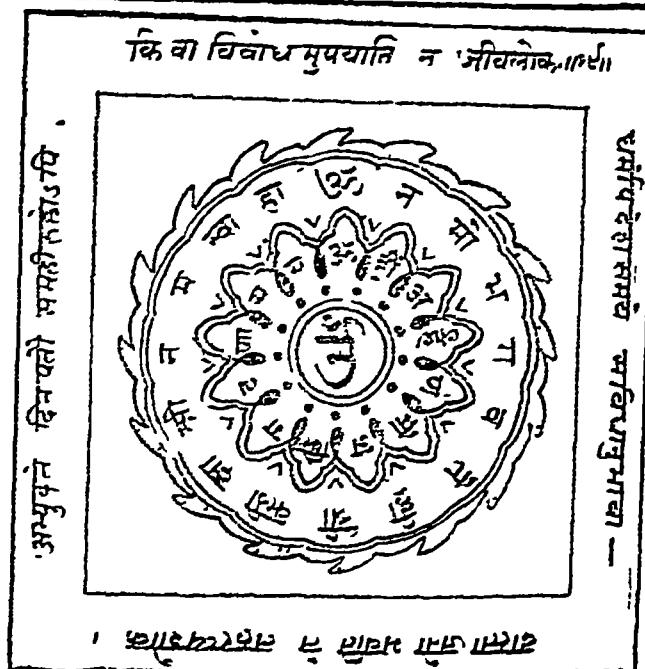
मन्त्र—ॐ नमोऽत्र (भुवि) भगवति देव्यै विषनिर्णाशिन्यै नमः स्वाहा ।

गुण—जिस स्त्री या पुरुष को भयङ्कर भुजङ्ग ने काटा हो उसके मुख, शिर और ललाट पर, उक्त मन्त्र से मन्त्रित जल के छोटे चुल्लू मे भर भर कर उस समय तक मारता रहे जब तक वह निर्विष न हो जाय । इस मन्त्र से सर्प का विष उतर जाता है ।

"फल—कम्पिला नगरी के धर्मगीर्य नाम के ग्वाल ने एक मुनि द्वारा प्रदत्त उक्त महामन्त्र के प्रभाव से सर्प द्वारा सताये गये सैकड़ो मानवो को प्राणदान दिया था ।

श्लोक १६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खिणदे (ह ?) णासए।
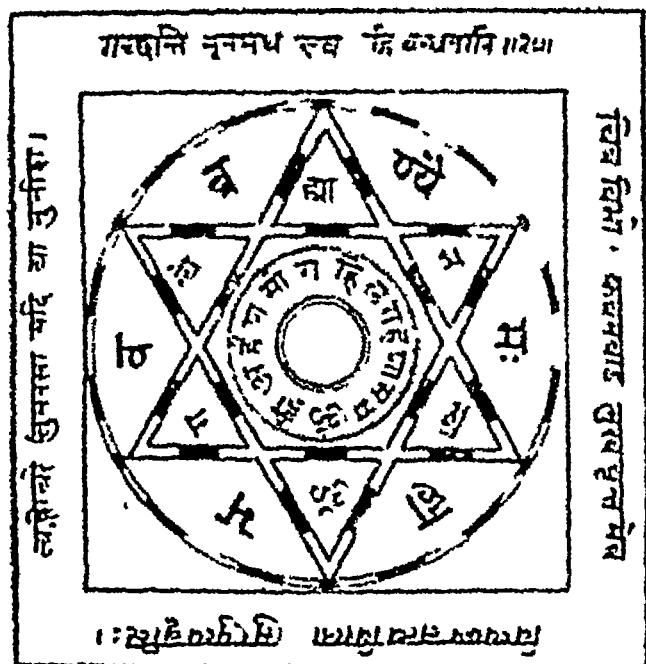
मन्त्र—ॐ (नमो भगवते) ह्रीं श्रीं क्लीं ज्ञा ची नमः (स्वाहा)।

गुण—नेत्रपीडा दूर होती है। जब आँख आई हुई हो तब भोज-पत्र पर रसोद से लिख कर गले में बांधना चाहिये।

फल—अङ्गदेश की चम्पापुर नगरी के विजयभद्र राजश्रेष्ठी ने विदेश में कुमारुओं के मन्त्रबल से नेत्रज्योतिरहित साथियों को इस महा-मन्त्र की साधना से पुनः ज्योति प्रदान की थी।

श्लोक २०

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउ (पाहित ?) विउ (गाह ?) पा (णा ?) सण।

मन्त्र—ॐ (भगवत्यै) प्रक्षाणि (एयं ?) नमः स्वाहा।
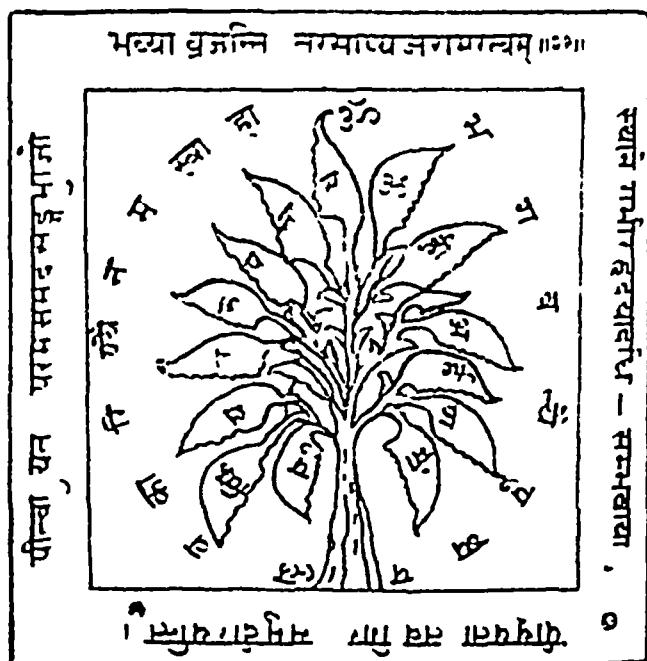
गुण—विधिपूर्वक मन्त्राराधन से उच्चाटन अर्थात् जिसे साधक नहीं चाहता उसका निराकरण होता है।

फल—कुपजाङ्गल देश की हस्तिनागपुर नगर निवासिनी राज-कुमारी अनङ्गलीला ने २० वें श्लोकसहित उक्त मन्त्र की आराधना से कामान्ध पुरुष का उच्चाटन कर अपने सतीत्व की रक्षा की थी।

श्लोक २१

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पुप्फि (य) ग (त ?) रुय (प ?) त्ताए।
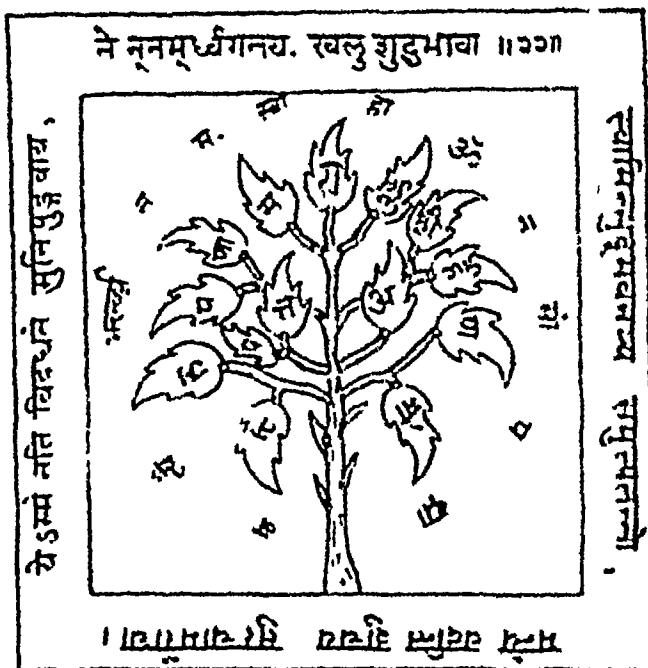
मन्त्र—ॐ भगवती (त्ये ?) पुष्पपल्लवकारिणि (ण्यै ?) नम (स्वाहा) ।

गुण—सूखे हुए वन-उपवन के वृक्ष पुन पल्लवित होने लगते है ।

फल—राजपूताना प्रान्त की नागोर नगरी के ग्राहका नामक माली ने एक मुनि द्वारा प्रदत्त कल्याणमन्दिर के २१ वें श्लोकसहित उक्त मन्त्र की साधना करके शुष्क उपवन के वृक्षो को पुन पल्लवित कर लोगो को आश्चर्यचकित किया था और जैनधर्म की प्रभावना बढाई थी ।

श्लोक २२

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्त (प ?) त्त पणासए।

मन्त्र—ॐ नमो पद्मावत्यै म्ल्व्र्यूं नमः स्वाहा।
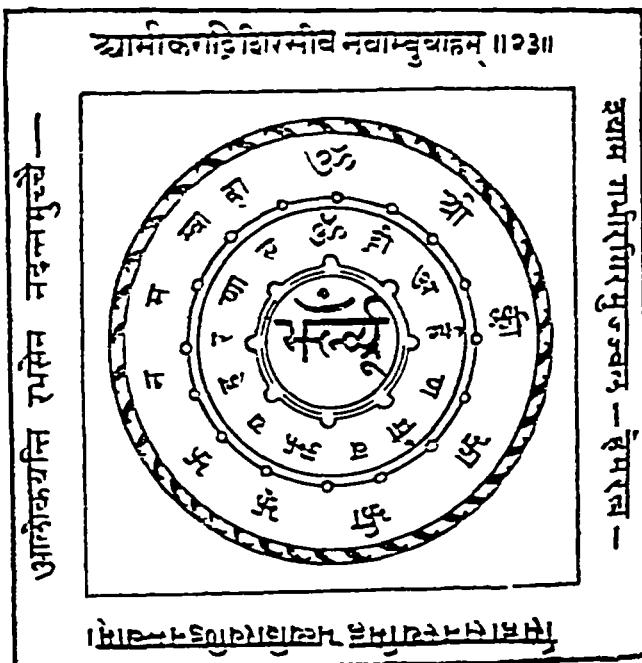
गुण – वन उपवन के जिन वृक्षो में किसी कारण से फल लगना बन्द हो जाते हैं उनमें पुन मधुर फल पैदा होने लगते हैं।

फल—कौशाम्बी नगरी के सुमतिदत्त राजश्रेष्ठी के उद्यान में राघव माली ने एक मुनि द्वारा प्राप्त इस स्तोत्र के २२ वे श्लोक सहित उक्त मन्त्र की साधना द्वारा फलरहित वृक्षों को मधुर फलदायक किया था।

श्लोक २३

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वज्ज (उफ ?) च हरणाए।

मन्त्र—ॐ नमो (×) श्रीं क्लीं भ्रूं भ्रौं भ्रूं भ्रूं नमः (स्वाहा)।
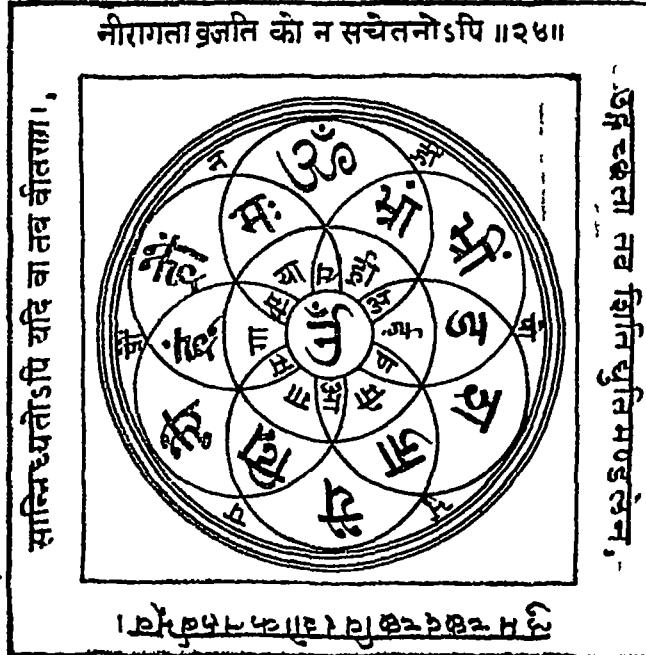
गुण—राज दरबार मे जय, सम्मान तथा हर जगह मान्यता होती है।

फल—अनङ्गपुर नगर के राजा वीरसुबाहु द्वारा पदच्युत राज्य सचिव सुमति ने इस स्तोत्र के २३ वें श्लोक सहित उक्त मन्त्र की आराधना से पुनः राज्य सम्मान प्राप्त किया था।
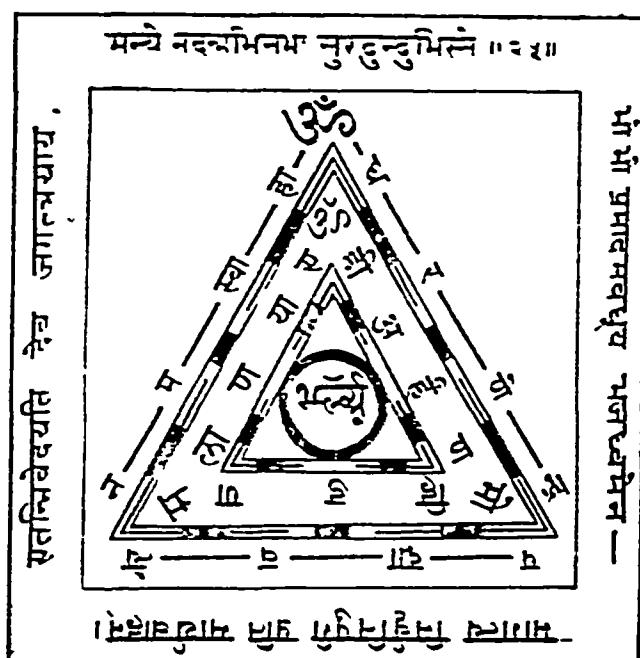
श्लोक २४

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगास ग (गा ?) मियाए।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रा श्रीं षोडशभुजे (जायै ?) पद्मो (छिन्यै) श्रों (श्रौं ?) ह्रूं ह्रौं नमः (स्वाहा)।

गुण—हाथ से गया हुआ अपना राज्य तथा स्थान पुन. प्राप्त होता है।

फल—ताम्रलिप्ती नगर के राजा चन्द्रसेन ने शत्रु द्वारा विजित प्रदेश पर इस स्तोत्र के २४ वें श्लोक सहित उक्त मन्त्र की आराधना से पुन अपना स्वामित्व स्थापित किया था।
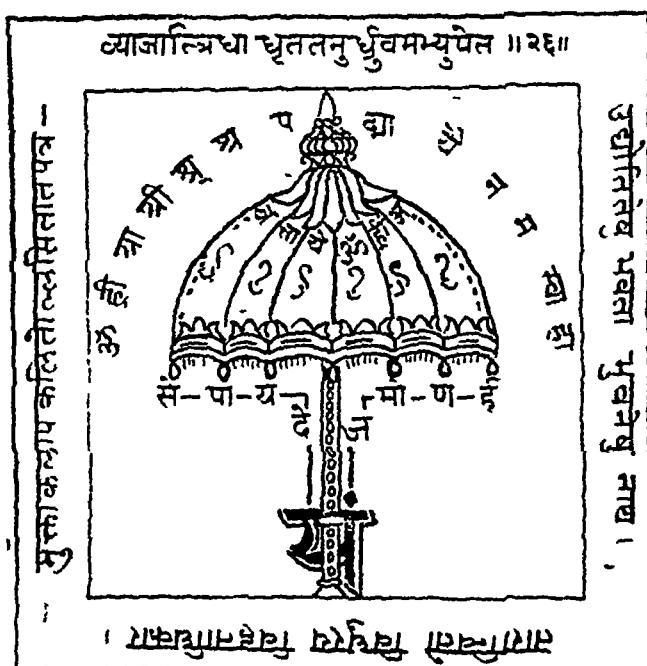
श्लोक २५

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो हिडक (हिडण ?) मला-णयाए।

मन्त्र—ॐ नमो (×) धरणेन्द्रपद्मावत्यै नमः (स्वाहा)।

गुण—रोग, शोक और पीडा का नाश होता है। हर्ष बढता है तथा सर्व प्रकार के रोग शान्त होते हैं।

फल—प्रतिष्ठान देश की कामन्दिका नगरी के स्वार्थदत्त नामक महाजन ने इस स्तोत्र के २५ वें काव्य सहित उक्त मंत्र की साधना द्वारा असाध्य रोगों को शान्त किया था।
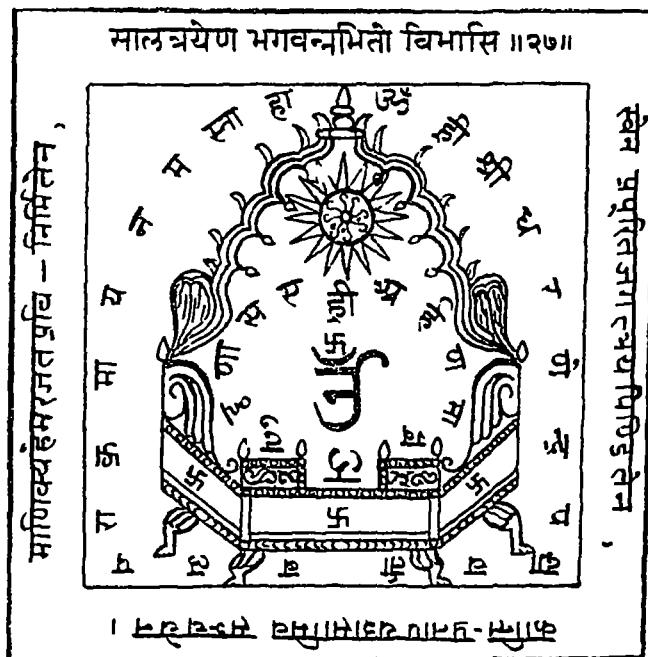
श्लोक २६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जयदेयपासेवत्ताये।

मन्त्र—ॐ ह्रीं आ श्रीं श्रूं श्रः पद्मे (श्चायै ?) नमः (स्वाहा)।

गुण--राज्यसभा में साधक की सम्मति तथा उसके कहे हुए वचन सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

फल--शिवपुर नगर के दीर्घदर्शी नामक मन्त्री ने इस स्तोत्र के छव्वीसवें काव्यसहित उक्त मन्त्र की साधना से राज्य दरबार में अपने वचनों को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था।

श्लोक २७
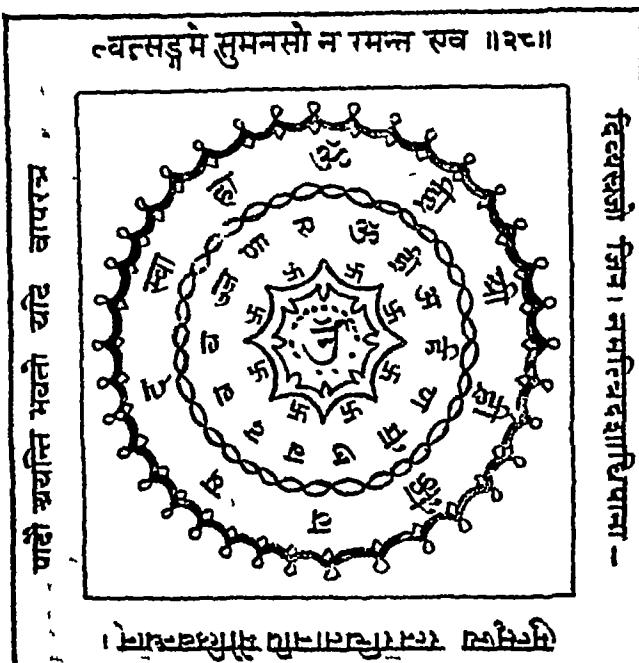
ऋद्धि---ॐ ह्रीं अर्हं णमो खल-दुट्ठणासए।

मन्त्र---ॐ ह्रीं श्रीं धरणेन्द्रपद्मावतीबलपराक्रमाय नम (स्वाहा)।

गुण----दुश्मन पराजय को प्राप्त होता है और वैर-विरोध छोड कर शत्रु शान्त होता है।

फल ---हर्षवती नगरी के अधिपति मेघमाली ने इस स्तोत्र के २७ वें काव्यसहित उक्त मन्त्र के प्रभाव से शत्रु राजाओं को परास्त कर उन्हें अपना मित्र बनाया था।

श्लोक २८
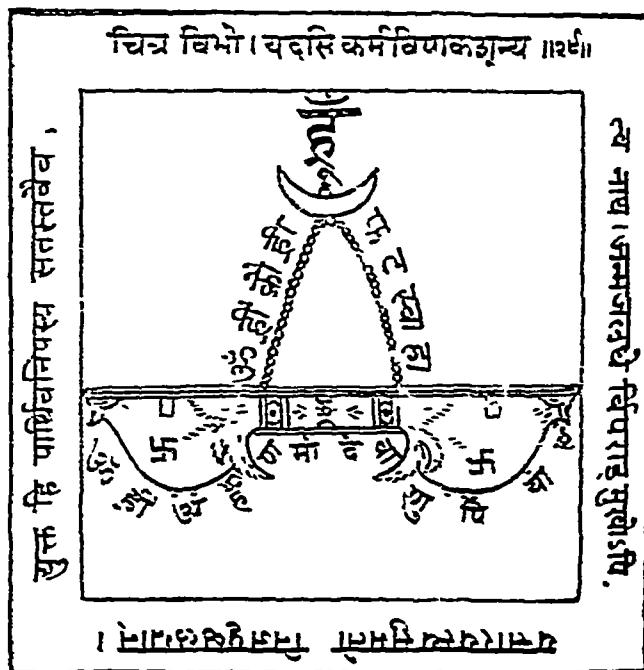
ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उव (दव) वज्जणाए।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्रों (क्रौं ?) वषट् स्वाहा।

गुण— ससार मे द्वितीया के चन्द्रमा की तरह निरन्तर यश और कीर्ति बढती है और जगह जगह विजय प्राप्त होती है।

फल—विशालापुरी नगरी में विश्वभूषण ब्राह्मण ने इस स्तोत्र के २८ वें काव्यसहित इस मंत्र के आराधन से राज्य में यश प्राप्त किया था।

श्लोक २९

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो देवाणुप्पि (पि ?) याए।

मन्त्र—ॐ ह्रीं क्रौं ह्रौं हूँ फट् स्वाहा।

गुण—सर्वजन प्रसन्न होते हैं। जिनको प्रसन्न करना है उसे उक्त मन्त्र से मन्त्रित सुपारी, इलायची अथवा लवंग खिलावे।

फल—चिहपुरी के लक्षीवर नामक ग्वाल ने इस स्तोत्र के २९ वें काव्यसहित उक्त मन्त्र की साधना द्वारा अनेक पुरुषों को प्रसन्न किया था।

श्लोक ३०

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भद्दा (वला ×) ए।
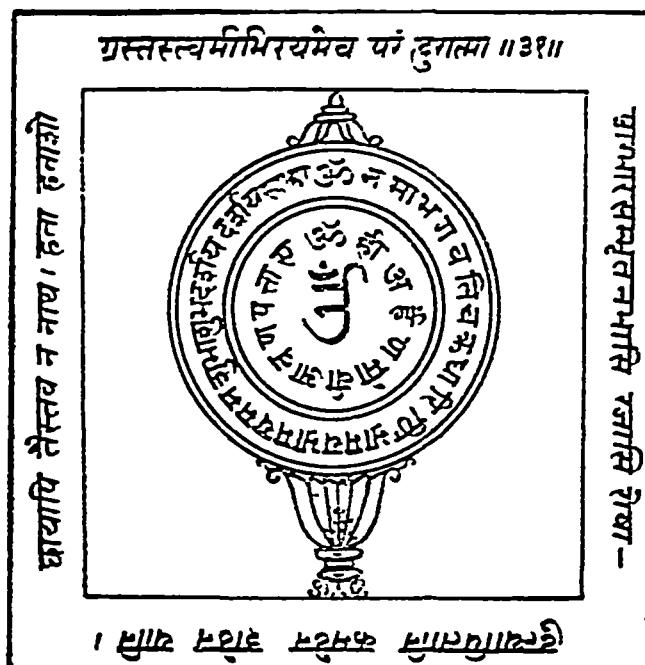
मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं भ्रीं (भ्रों ?) ह्रूं नम स्वाहा।

गुण—अपरिपक्व (कच्चे) मिट्टी के घडे द्वारा कुएं से पानी निकाला जाता है।

फल—दक्षिण मथुरा की गुणवती नाम की स्त्री ने इस स्तोत्र के ३० वें श्लोकसहित उक्त महामन्त्र की आराधना करके मिट्टी के कच्चे घडे से पानी निकाल कर दर्शकों को आश्चर्यचकित किया था।
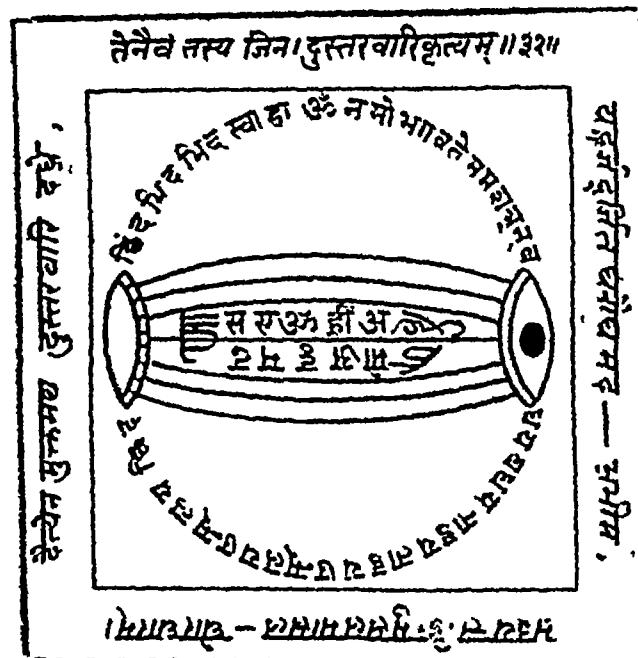
श्लोक ३१

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वी (वो ?) या (मा ?) वण (णं ?) न (प ?) त्ताए।

मन्त्र—ॐ नमो भगवति चक्रधारिणि भ्रामय भ्रामय, मम शुभाशुभं दर्शय दर्शय स्वाहा ।

गुण—पूछे गये शुभाशुभ प्रश्न का फल ज्ञात होता है ।

फल—क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जयिनी नगर के कनककान्त ब्राह्मण ने इस मन्त्र का फल प्राप्त किया था ।
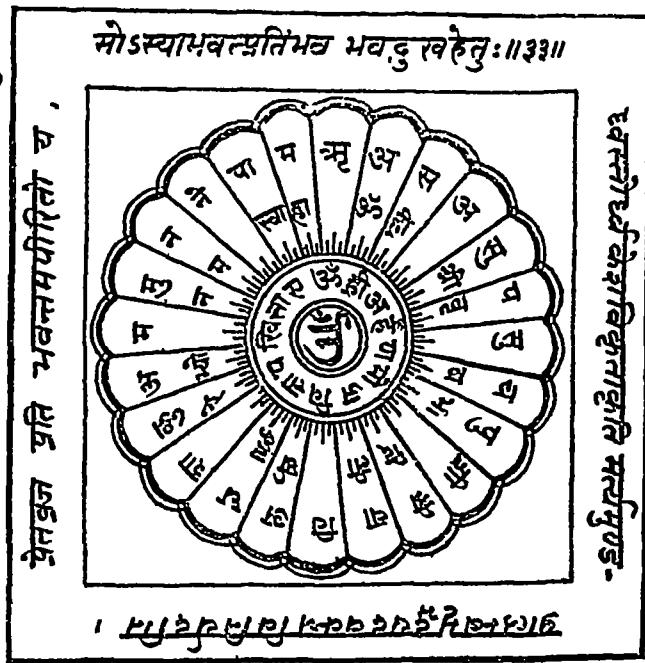
श्लोक ३२

ऋद्धि—ॐ अर्हं णमो अट्ठमट्ठ (द ?) णासए।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते मम शत्रून् बंधय बंधय ताडय ताडय, उन्मूलय उन्मूलय, छिद छिद, भिद भिद स्वाहा।

गुण—दुष्ट पुरुष का बल निर्बल होता है, शत्रु की सांघातिक शस्त्रादिविद्या का जोर नष्ट होता है तथा अपनी दुष्टता को छोड़ देता है।

फल—राजग्रही नगरी के विश्व-विख्यात शिव-मन्दिर में विराजमान सत्यशील मुनि ने इस स्तोत्र का पाठ करते हुए उक्त मन्त्र के प्रभाव से मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी द्वारा कृत उपसर्गों पर विजय प्राप्त की थी तथा उसकी दुष्टता का दलन किया था।

श्लोक ३३

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जविताय (प ?) खित्ताए ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं वृषभादितीर्थङ्करेभ्यो नम स्वाहा ।
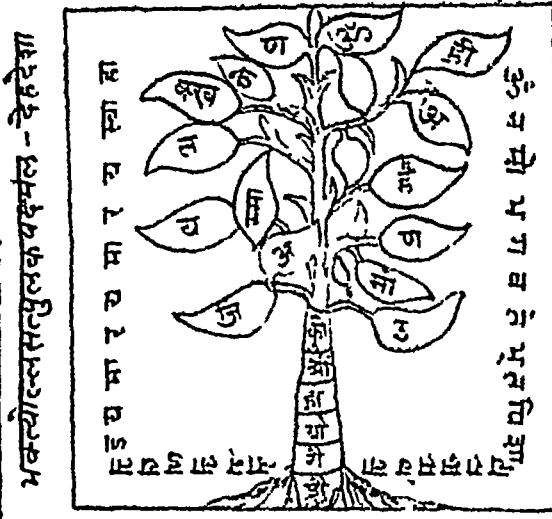
अथवा

ऋ अस असु पसु चंपु शांश्रे वावि अधशाकुं अभमुनने पाम ।

गुण—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, उत्कापात एव टिड्डीदल को रोककर संभावित दुर्भिक्ष से जनता की रक्षा होती है ।

फल—सिरपुर (श्रीपुर) नगर के पुखराज कृषक ने इस स्तोत्र के ३३ वें काव्यसहित उक्त मन्त्र की साधना द्वारा उसके प्रभाव से सम्भावित दुर्भिक्ष को रोका था ।

श्लोक ३४

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उंजि अस्सायतक्खणणं।
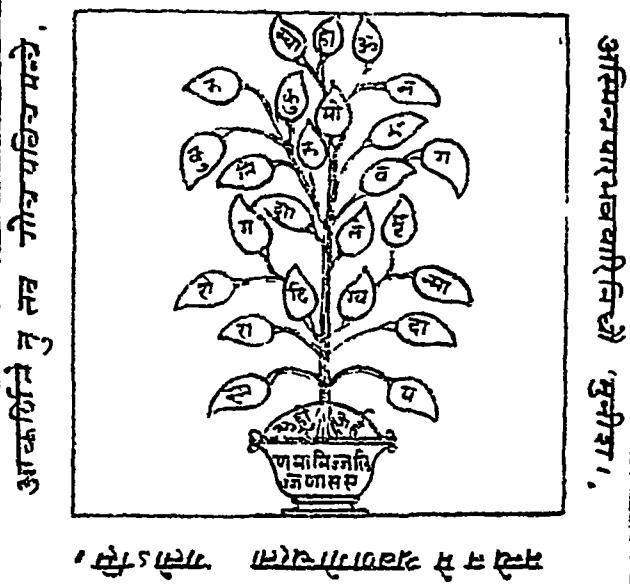
मन्त्र—ॐ ह्रीं नमो भगवति (ते ?) भूतपिशाचराक्षस-वेतालान् ताडय ताडय, मारय मारय स्वाहा।

गुण—भूत, पिशाच, राक्षस, शाकिनी और डाकिनी की पीड़ा तथा शत्रुभय का विनाश होता है।

फल—गोदावरी नदी के किनारे पैठनपुर नगर के प्रतापकुंवर को पिशाच द्वारा सताये जाने पर श्रुतधी नाम के वणिकपुत्र ने इस स्तोत्र के ३५ वें काव्यसहित इस मन्त्र की जाप जप कर तथा इसी मन्त्र से मन्त्रित जल को पिलाकर पिशाच की बाधा दूर की थी।

श्लोक ३५

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो भिज्जतिज्जणासए।

मन्त्र—ॐ नमो भगवति (ते ?) मिगियागदे अपस्मारे (मृग्युन्मादापस्मारादि ?) रोगे (ग ?) शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।

गुण—मृगी, उन्माद, अपस्मार और पागलपन आदि असाध्य रोग शान्त होवे हैं।

फल—पाटलिपुत्र नगर के रुद्रदत्त वणिक ने इस स्तोत्र के ३५ वें पद्यसहित उक्त मंत्र की साधना से अनेकों के मृगीरोग को दूर किया था।

श्लोक ३६

ऋद्धि---ॐ ह्रीं अर्हं णमो भ्रा (भ्रा ?) हुं फट् विचक्राए ।

मन्त्र---ॐ ह्रीं अष्टमहानागकुलविषशांतिकारिणि (ण्यै?) नमः स्वाहा ।
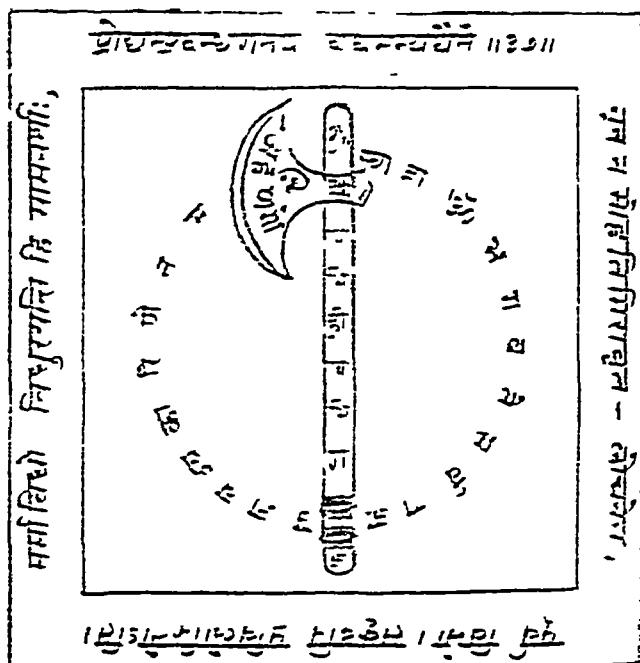
गुण—इस महामन्त्र के प्रभाव से काला नाग पकड़े तो काटे नहीं और इसी मन्त्र से कंकड़ो को मंत्रित कर सर्प के ऊपर फेंके तो वह कीलित हो जाता है तथा उसका विष असर नही करता है ।

फल—मिथिलापुरी नगरी के मनवी नाम के धोबी ने दिगम्बर मुनि द्वारा प्रदत्त इस स्तोत्र के ३६ वें श्लोकसहित उक्त मंत्र के आराधन से बडे बड़े विषधरो को वश मे किया था ।
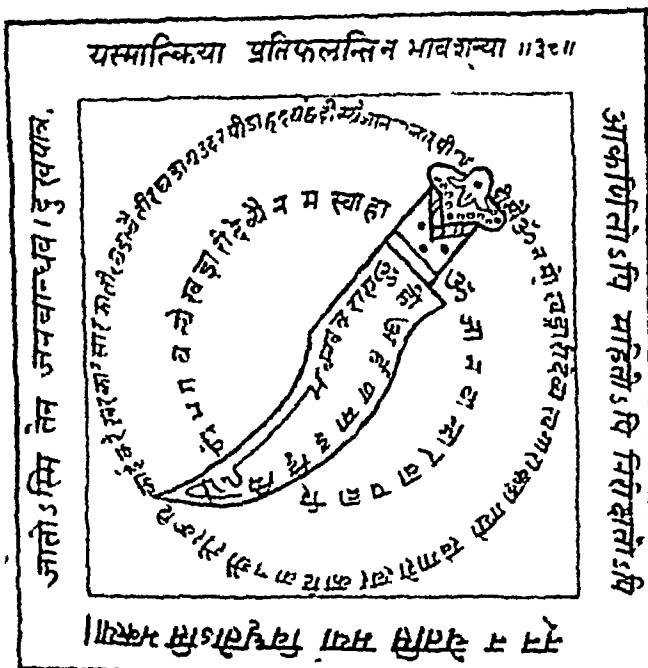
श्लोक ३७

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वो (सो ?) सिद्धो ह्रीं खोमिए।

मन्त्र—ॐ नमो (x) भगवति (ते ?) महराजा-प्रजावश्य (म ?) कारिणि (णे ?) नमः स्वाहा।

गुण—यंत्र को पास में रख कर उक्त मंत्र से ७ कंकरों को मंत्रित कर, क्षीरवृक्ष के नीचे उन्हें ऊपर उछाल कर अधर झेले पश्चात् नगर के चौराहे पर डालने से राजा से मिलाप होता है, श्रेष्ठ पुरुषों से सन्मान प्राप्त होता है।

फल—जालन्धर नगर के नानीमल सज्जन ने इस मंत्र का आराधन कर श्रेष्ठ पुरुषों से सन्मान पाया था और राजा से मिलाप हुआ था।
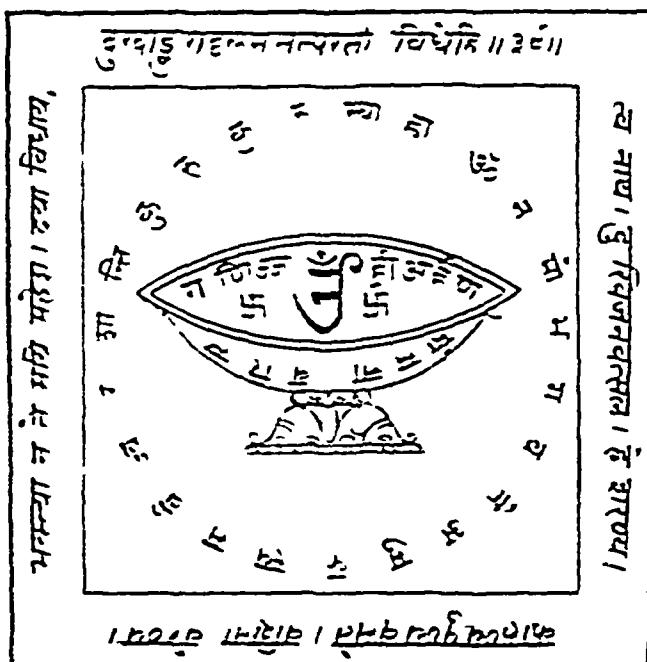
श्लोक ३८

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो इद्धि (ड्ढि?) मिद्धि (ड्ढि?) मरंफ (भक्खं?) कराए।

मन्त्र—ॐ जानवा (जनेवा) न्हारवापहारिण्यै भगवत्यै खड्गारी देव्यै नमः स्वाहा।

गुण—नहरुवा, जनेवा, उदर तथा हृदय की पीड़ा नष्ट होती है। होली की राख को उक्त मंत्र से २१ बार मंत्रित कर रोग दूर होने तक प्रतिदिन उससे झाड़े।

फल—काञ्चीपुर नगर के शिवशर्मा ब्राह्मण ने मुनिप्रदत्त इस मंत्र की भावना द्वारा उक्त रोगों से पीड़ित मनुष्यों की पीड़ा दूर की थी।

श्लोक ३६

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सता (त्ता?) वरिएणु (ण?) जिणाणं।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते (अमुकस्य) सर्वज्वरशान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

गुण—सर्वज्वर तथा सन्निपात दूर होता है। भूर्जपत्र पर यंत्र लिख कर रोगी के कण्ठ में धूप देकर बाँध देवे।

फल—पद्मखण्ड नाम की नगरी में इन्द्रप्रभ ने इस स्तोत्र के ३६ वें श्लोकसहित इस मंत्र को सिद्ध करके इसके प्रभाव से अनेकों ज्वरपीड़ित मनुष्यों की पीड़ा दूर की थी।
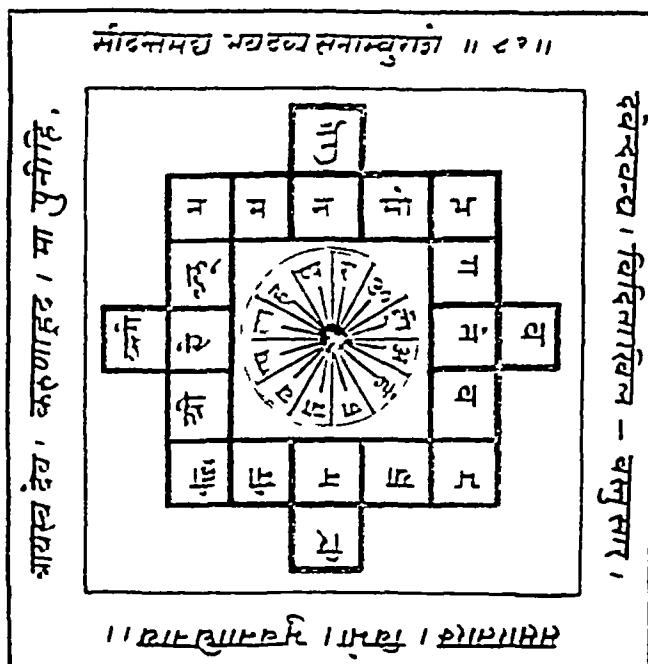
श्लोक ४०

ऋद्धि--ॐ ह्रीं अर्हं णमो उन्ह (एह ?) सीम (य ?) णासए।

मन्त्र--ॐ नमो भगवते भल्व्र्यूं नम स्वाहा।

गुण--इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि विषमज्वर दूर होते हैं।

फल--सौरीपुर नगर के चन्द्रशेखर महाशय ने इस ४० वें काव्य-सहित इस मंत्र की आराधना के प्रभाव से विषमज्वरपीड़ित मनुष्यों का कष्ट मिटाया था।
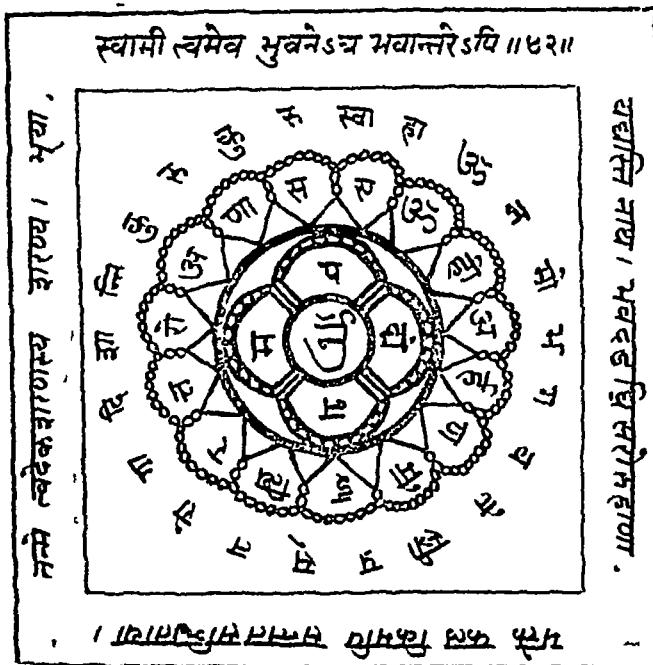
श्लोक ४१

ऋद्धि---ॐ ह्रीं अर्हं णमो वप्पला हव्व (प ?) ए।

मन्त्र---ॐ नमो भगवते वभयारि नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं व्लूँ नम (स्वाहा)।

गुण---संग्राम मे तीर, तलवार, बरछा, भाला तथा अन्य अस्त्र शस्त्र साधक को घायल नही कर पाते।

फल--- उत्तर मथुरा के राजा श्रीदर्शन ने इस स्तोत्र के ४१ वें काव्यसहित मंत्र की आराधना से संग्राम मे शत्रु राजाओ के अस्त्र-शस्त्रो को कुण्ठित कर अपनी वा अपने सेवको की रक्षा की थी।

श्लोक ४२

ऋद्धि---ॐ ह्रीं अर्हं णमो इत्थि वत्थ (रत्त ?) (रोम) णामए।
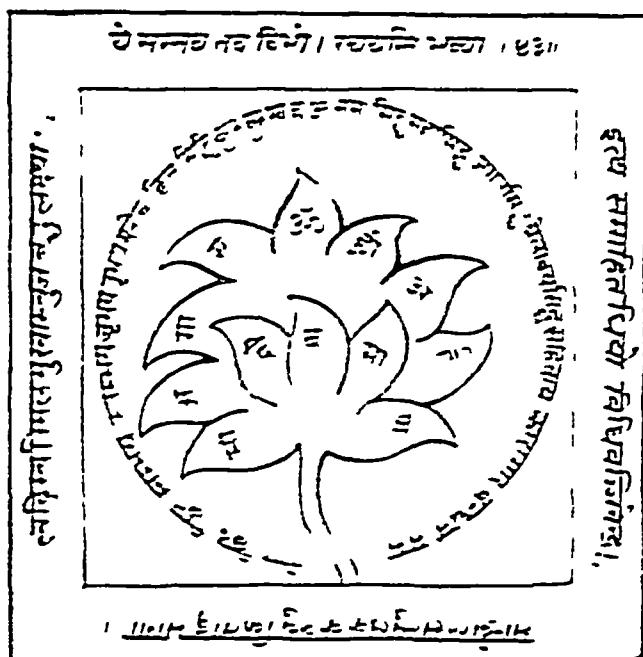
मन्त्र---ॐ नमो भगवते स्त्रीप्रसूतरोगादिशान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

गुण---स्त्रियो का प्रदररोग दूर होता है, बहता हुआ रुधिर रुक जाता है तथा गर्भ का स्तम्भन होता है।

फल---उक्त मत्र की साधना द्वारा धनदत्त श्रेष्ठी की पुत्री मदन-सेना ने अपने प्रदरादि रोगो को दूर कर नवजीवन प्राप्त किया था।
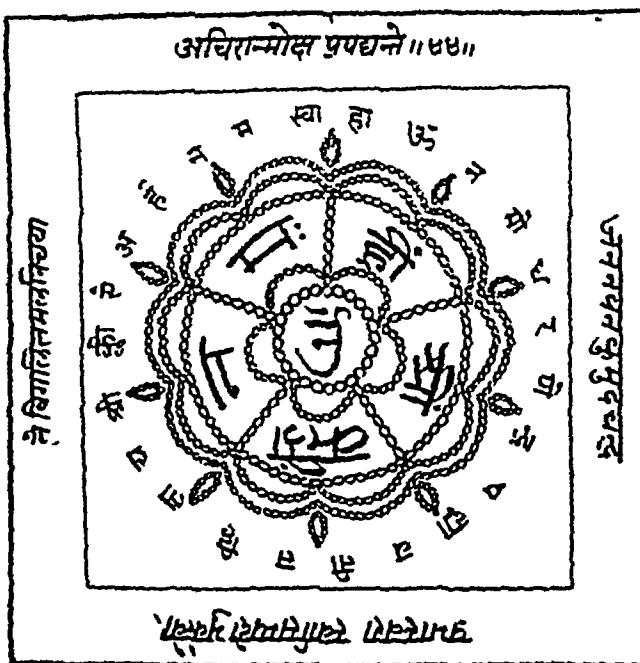
श्लोक ४४

ऋद्धि—ॐ ह्री श्री क्ली नम ।

मंत्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्री क्ली ऐं अर्हं नम (स्वाहा)।

गुण—लक्ष्मी की प्राप्ति और व्यापार मे लाभ होता है।

फल—तिलकपुर नगरी के मिथ्यात्वी अमरदत्त वैश्य ने इस स्तोत्र के ४४ वें काव्यसहित इस मंत्र की आराधना के प्रभाव से विपुल सम्पत्ति प्राप्त की थी।

कल्याणमन्दिर मन्त्रसाधन की विधि

श्लोक १,२—लाल रेशमी वस्त्र पहिन कर, लाल रेशम की माला लेकर, पर्वत के ऊपर पूर्व की ओर मुख करके, लाल आसन पर बैठ कर ६० दिन तक प्रतिदिन १००८ वार श्रद्धा-सहित ऋद्धि मन्त्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे कपूर, कस्तूरी, चन्दन और शिलारस मिश्रित धूप क्षेपण करे ।।१,२।।

श्लोक ३—लाल मूँगा की माला लेकर एकान्त मे पश्चिम की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठकर श्रद्धा-पूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मन्त्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल, चन्दन, छाड-छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे यन्त्र पास रखे ।।३।।

श्लोक ४—कमलगटा की माला लेकर, एकान्तस्थान मे पूर्व की ओर मुख करके पीले रग के आसन पर बैठ कर स्थिरचित्त से रविवार के दिन प्रात काल १००० वार ऋद्धि-मन्त्र का स्थिरचित्त होकर जाप जपे और निर्धूम अग्नि मे गूगल, चन्दन, कपूर और घृत मिश्रित धूप खेवे ।

इस विधि मे ९ वर्ष तक प्रतिवर्ष रविवार व्रत करे तथा प्रतिवर्ष लगातार ४० रविवार के दिनो मे उक्त ऋद्धि-मन्त्र की जाप जपे । एकाशन, भूमिशयन तथा ब्रह्मचय से रहे ।। ४ ।।

श्लोक ५—स्फटिकमणि की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, एकान्त स्थान मे सफेद आसन पर पद्मासन से बैठ कर श्रद्धापूवक ४९ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-

मत्र को जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल, कुदरू कपूर, चन्दन और इलायची मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥५॥

श्लोक ६—पद्मबीज की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, निर्जन स्थान मे हरे रग के आसन पर बैठ-कर श्रद्धापूर्वक ४० दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गरी, गूगल, लवग और चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥६॥

श्लोक ७—लालमूँगा की माला लेकर, नैऋंत्य की ओर मुख करके, रात्रि के समय एकान्त स्थान मे, जोगिया रग के आसन पर बैठ कर, एकाग्रचित से २७ दिन तक प्रतिदिन १२०० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा धूमरहित अग्नि मे गूगल, लोभान, चन्दन और प्रियगुलता मिश्रित धूप खेवे ॥७॥

श्लोक ८—चाँदी की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, कोलाहलरहित स्थान मे डाभ के आसन पर बैठ कर स्थिरचित्त होकर १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे और निर्धूम अग्नि मे गूगल, कुदरू और सफेद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥८॥

श्लोक ९—रुद्राक्ष की माला लेकर, आग्नेय की ओर मुख करके एकान्त निर्जन स्थान मे काले ऊन की आसन पर पद्मासन से बैठ कर पूर्ण विश्वास सहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा शिखारहित निर्धूम अग्नि मे गूगल, राहर और कुदरू मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥९॥

श्लोक १०—सोने की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, पीले रग के आसन पर बैठ कर १८ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा गूगल और चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१०॥

१००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल मावा (खोवा) चन्दन और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१६॥

श्लोक १७—स्फटिकमणि की माला लेकर, नैऋर्ण्य की ओर मुख करके, सफेद आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि मत्र का जाप जपे और निर्धूम अग्नि मे चन्दन, कपूर, इलायची तथा घृत मिश्रित धूप क्षपण करे। यत्र पास रखे ॥१७॥

श्लोक १८—चन्दन की माला लेकर आग्नेय की ओर मुख करके, काले रग के आसन पर बैठ कर सुदृढ मन से ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल और कु दरू मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥१८॥

श्लोक १९– चन्दन की माला लेकर, नैऋर्त्य की ओर मुख करके, हरे रग के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा प्रज्वलित निर्धूम अग्नि मे चन्दन, अगर और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे।

श्लोक २०—रुद्राक्ष की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके एकान्त निर्जन स्थान मे जोगिया (भगवा) रग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक ४९ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल और राहर मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२०॥

श्लोक २१—तुलसी की माला लकर वायव्य की ओर मुख करके, डाभ के आसन पर बैठकर श्रद्धासहित १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल, छाड छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२१॥

श्लोक २२—तुलसी की माला लेकर, नैऋर्त्य की ओर मुख

करके, एकान्त स्थान मे डाभ के आसन पर बैठकर श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा गूगल, छाड छबीला और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। इस विधि मे भूमिशयन तथा एकाशन अवश्य करे ।।२२।।

श्लोक २३—लाल रेशम की माला लेकर,पूर्व की ओर मुख करके, एकान्तस्थान मे लाल रग के आसन पर बैठ कर विश्वासपूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे चन्दन, कस्तूरी और सिला-रस मिश्रित धूप क्षेपण करे। सोना या चादी के पत्र पर यत्र खुदवाकर पास रखे ।।२३।।

श्लोक २४—लाल रग की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, लाल रग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक २७ दिन तक प्रतिदिन २००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे कपूर, कस्तूरी, शिलारस और सफद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे।

मत्रसाधना के अन्तिम दिन हवन करने के उपरान्त श्रावको की २५ कुवारी कन्याओ को मोहनभोग तथा हलुवा का भोजन करावे। यत्र को भुजा मे बाध कर मत्र की साधना एकान्त स्थान मे करे ।।२४।।

श्लोक २५—स्फटिकमणि की माला लेकर, पश्चिम की ओर मुख करके, सफेद रग के आसन पर बैठ कर स्थिर चित्त से २१ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे कपूर, चन्दन, इलायची और कस्तूरी मिश्रित धूप क्षेपण करे।

भोजपत्र पर अष्टगध से यत्र लिखकर गले मे बाधे और होली तथा दिवाली की रात मे मत्र को जगावे ।।२५।

श्लोक २६—लाल मूंगा की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, लाल रंग के आसन पर बैठ कर २७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में अगर, छाडवेर और छाड-छबीला मिश्रित धूप क्षेपण करे।

श्लोक २७—काले सूत की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके काले ऊन की आसन पर बैठकर श्रद्धापूर्वक २१ दिन तक प्रति-दिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, गरी, सेंधा नमक तथा घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। अन्तिम दिन भोजपत्र पर यन्त्र लिख कर उसे पंचामृत में मिला कर नदी में प्रवाहित करे ॥२७॥

श्लोक २८-पीले सूत की माला लेकर, दक्षिण की ओर मुख करके, पीले रंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में चंदन लवंग, कपूर, इलायची तथा घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२८॥

श्लोक २९- विद्रुम (मूंगा) की लाल माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, लालरंग के आसन पर बैठ कर एकाग्रमन से २१ दिन तक प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कस्तूरी शिलारस, अगर और सफेद चन्दन मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥२९॥

श्लोक ३०--रुद्राक्ष की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर ६० दिन तक प्रतिदिन ७०० बार ऋद्धि और मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में दशाङ्ग अथवा गूगल, लोभान एवं घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३०॥

श्लोक ३१--सूत की सफेद माला लकर, पूर्व की ओर मुख

करके सफेद आसन पर बैठ कर १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे चन्दन, अगर और छाड छबीला मिश्रित धूप क्षेपण करे। १५ वें दिन घृत, अगर तथा पीले सरसो से हवन करे तदुपरान्त मिष्टान्न वितरण करे ॥३१॥

श्लोक ३२--पद्मबीज की माला लकर नैऋत्य की ओर मुख करके, काल रग के आसन पर बैठ कर २७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे गूगल, तगर, नागरमोथा और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥३२

श्लोक ३३--रुद्राक्ष की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके जोगिया रग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा कपूर-चन्दन, गरी, इलायची और घृत मिश्रित धूप निर्धूम अग्नि मे क्षेपण करे ॥३३॥

श्लोक ३४--विच्छूकाटा के फलो की माला लेकर, वायव्य की ओर मुख करके, काले रग के आसन पर बठ कर मन, वचन, काय की चचल प्रवृत्ति को रोक कर २१ दिन तक प्रतिदिन २१ वार ऋद्धि-मत्र द्वारा मत्रित सरसो को पानी मे डाल और गूगल, सरसो, लालमिर्च एव घृत मिश्रित धूप की धूनी देवे ॥३४॥

श्लोक ३५--चन्दन की माला लेकर, नैऋत्य की ओर मुख करके, कदलीपत्र क हरित आसन पर बैठ कर निश्चल मन से २१ दिन तक प्रतिदिन ७०० वार ऋद्धि-मन्त्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे घृत और लोभान मिश्रित धूप क्षेपण करे। मत्र का जाप ब्रह्मचर्यपूर्वक एकान्त स्थान मे करे ॥३५।

श्लोक ३६--पाट (सन) की माला लेकर, ईशान की ओर

मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठकर श्रद्धापूर्वक ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा गूगल और कुन्दरू मिश्रित धूप निर्धूम अग्नि में क्षेपण करे ॥३६॥

श्लोक ३७--पूर्व की ओर मुख करके, लालरंग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूर्वक २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि-मंत्र का कनेर के फूलों से जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में कपूर और कस्तूरी मिश्रित धूप क्षेपण करे।३७।

श्लोक ३८-सफेद काष्ठ की माला लेकर, सफेद रंग के आसन पर बैठकर १४ दिनतक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में लवंग, कुन्दरू, चन्दन और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ।३८।

श्लोक ३९--कमल की माला लेकर ईशान की ओर मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठकर ७ दिनतक प्रतिदिन १००८ वार श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गूगल, गरी और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। ३९॥

श्लोक ४०--रुद्राक्ष की माला लेकर, ईशान की ओर मुख करके, हरे रंग के आसन पर बैठ कर विकल्प रहित मन से १४ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में गरी और गूगल मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥४०॥

श्लोक ४१-काले सूत की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके, काले रंग के आसन पर बैठ कर स्थिरचित्त से २१ दिनतक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि में नमक, मिर्च, गूगल और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे ॥४१॥

श्लोक ४२--कदलीफल की माला लेकर, उत्तर की ओर मुख करके, रग बिरगी लु गी के आसन पर बैठ कर २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे लवंग, कपूर, चन्दन, इलायची, शिलारस और घृत मिश्रित धूप क्षेपण करे। पद्मावती देवी की मूर्ति का कसूमल रग के वस्त्राभूषणो से शृङ्गार करे ।।४२।।

श्लोक ४३--काले रग के सूत की माला लेकर आग्नेय की ओर मुख करके, काले कम्बल के आसन पर बैठ कर श्रद्धा-पूर्वक १४ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे चन्दन, गूगल और लालमिर्च मिश्रित धूप क्षेपण करे ।।४३।।

श्लोक ४४--मूंगा की माला लेकर, पूर्व की ओर मुख करके लाल रग के आसन पर बैठ कर श्रद्धापूवक ४० दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा निर्धूम अग्नि मे कस्तूरी, चन्दन, शिलारस और कपूर मिश्रित धूप क्षेपण करे। ~~एकासन एवं भूमिशयन~~ करे और यत्र पास रखे । ४४।।

● ग्रन्थ समाप्ति ●

मुद्रक- मोहन प्रिंटिग प्रेस, जबलपुर म प्र